श्री तेज बहादुर चौधरी सामाजिक यथार्थवाद के चित्रकार हैं। वे कल्पना के जाल नहीं बुनते, अपना मन्तव्य सिद्ध करने के लिये उन्हें घटा बढ़ा कर नहीं रखते। वे एक साधारण गाँव लेते हैं, साधारण विषय लेते हैं, साधारण पात्र लेते और सहज ढंग से उनकी सारी कमजोरियों और अच्छाइयों के साथ उन्हें कुछ इस प्रकार पाठकों के सामने रख देते हैं कि पाठक को लगता है, वह सत्य से सक्षातकार कर रहा है, कि यह 'साधारण' कितना 'असाधारण' है जो उसके मानस पट पर अपना नक्श छोड़ जाता है, और उसे सोचने समझने पर विवश करता है।

आग और पानी—श्री तेज बहादुर चौधरी का लघु उपन्यास हमारे कथन का प्रमाण है। उपन्यास की भूरि-भूरि प्रशंसा डा० रामविलास शर्मा, प्रकाशचन्द्र गुप्त तथा अमृतराय जैसे प्रसिद्ध आलोचकों ने की है।

आग और पानी

[उपन्यास]

तेजबहादुर चौधरी

नीलाभ प्रकाशन
इलाहाबाद १

मूल्य सवा दो रुपये

प्रकाशक
धारा प्रकाशन
६, लूकरगंज, इलाहाबाद

विक्रेता
नीलाभ प्रकाशन
५, खुसरो बाग, इलाहाबाद

मुद्रक
जॉब प्रिन्टर्स
६६, हीवर्ट रोड, इलाहाबाद

रावलपिण्डी के निवासी

शहीद मौलाना चमनखाँ साहब को—

समर्पित

एक नजर

श्री तेजबहादुर चौधरी का यह लघु उपन्यास 'आग और पानी' पहली बार बम्बई से 'कौम के नाम पर' नाम से प्रकाशित हुआ था। किन्हीं कारणों से उस प्रकाशन-संस्था को अपना काम समेट लेना पड़ा और यह उपन्यास जैसा चाहिए था वैसा बाजार में आने से रह गया था। इस उपन्यास को उस वक्त जिन लोगों ने पढ़ा था, उनकी उसी वक्त से यह माँग थी कि इसका दूसरा संस्करण अवश्य होना चाहिए। उस वक्त डाक्टर राम विलास शर्मा, श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त तथा श्री अमृतराय-जैसे लब्ध-प्रतिष्ठ साहित्य-मर्मज्ञों तथा आलोचकों ने इस उपन्यास की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। किन्तु कुछ तो लेखक की लापरवाही के कारण और कुछ प्रकाशकों की गैरदिलचस्पी के कारण यह महत्त्वपूर्ण उपन्यास चार साल तक अप्रकाशित पड़ा रहा। आज इस उपन्यास को पुनः प्रकाशित हुआ देखकर हर्ष हो रहा है।

आग और पानी

एक समय डाक्टर राम विलास शर्मा ने श्री तेजबहादुर चौधरी की एक कहानी 'पेट पर मुक्का' के विषय में कहा था कि वह उस साल की श्रेष्ठ कहानियों में सहज ही रखी जा सकती है। श्री तेजबहादुर चौधरी से कथा-साहित्य को बड़ी-बड़ी आशायें थीं, किन्तु अपनी गृहस्थी और डाक्टरी के चक्कर में पड़कर इधर बरसों से उन्होंने कहानी लिखना प्रायः बन्द कर दिया है। हाँ, वैद्यक-साहित्य को जरूर मालोमाल किया है। हमें आशा है कि इस उपन्यास के प्रकाशन के बाद वह पुनः लिखने लगेंगे और अपनी नयी कहानियों तथा उपन्यासों से हिन्दी कथा-साहित्य का भंडार भरेंगे।

श्री तेजबहादुर को पश्चिमी उत्तर प्रदेश के गाँवों के जीवन का काफी गहरा अनुभव है। वहाँ के जमींदारों, किसानों, महाजनों और मजदूरों की रोजमर्रा की जिन्दगी, बर्ताव-व्यवहार, बोल-चाल, सुख-दुख, लड़ाई-झगड़े और जीवन-संघर्ष को उन्होंने बहुत नजदीक से, उन्हीं के बीच रहकर, घुल-मिल कर, ताल्लुक पैदा कर के देखा है, अध्ययन किया है और उनकी रग-रग से वाकफियत हासिल की है।

यही कारण है कि वे उधर के गाँवों की जिन्दगी के जिस पहलू को भी अपनी रचनाओं में लेते हैं, उसे चमका देते हैं। उनकी कहानियाँ या यह उपन्यास पढ़ते समय पाठक उन गाँवों में सहज ही पहुँच जाता है, और जैसे वहाँ के लोग-बाग, हवा-पानी, बाजार और गली-गलियारे से एकजान होकर उनकी सरगर्मियों में हिस्सा लेते हुए उनकी कहानी पढ़ता है।

एक नजर

लेखक बड़े ही सहज ढंग से कहानी कहता है, और पात्रों से उन्हीं की बोल-चाल की जबान में आपका परिचय कराता है, बातें कराता है। सच तो यह है कि श्री तेज-बहादुर चौधरी हिन्दी के वे पहले लेखक हैं, जिनकी रचनाओं में पश्चिमी उत्तर प्रदेश की जनता की जिन्दा जबान वह साहित्यिकता लेकर आती है कि अच्छे-अच्छे साहित्यिक भी उसकी शक्ति, उसका सौन्दर्य, उसकी व्यंजना और सब के ऊपर उसकी सहजता और स्वाभाविकता और जिन्दापन देख कर झूम जायँ। लेखक की उस जबान की समझ, महारत और पकड़ इतनी जबरदस्त है कि वह जिस शब्द को भी लेता है, उसका मूल्य बढ़ जाता है।

तेजबहादुर चौधरी सच्चे अर्थों में यथार्थवादी लेखक तथा मानवता के पुजारी हैं। 'आग और पानी' में वर्णित गाँव जहाँ हमारे देश के सभी गाँवों का प्रतिनिधित्व करने की क्षमता रखता है, वहीं वह अपना व्यक्तित्व भी नहीं खोता। उसी तरह उसके पात्र जहाँ अपने वर्ग के प्रतिनिधि हैं, वहीं वे अपना-अपना अलग-अलग व्यक्तित्व भी सँजोये हुए हैं। सामाजिक यथार्थवाद और थोथे यथार्थवाद में यही अन्तर है। श्री तेजबहादुर चौधरी सामाजिक यथार्थों के चित्र-कार हैं। वे किसी काल्पनिक आदर्शवाद के चक्करमें पड़कर अपने विषय या पात्रों को 'आदर्शवाद' का जामा पहना कर पेश नहीं करते—कल्पना के जाल नहीं बुनते, अपना 'मन्तव्य सिद्ध करने के लिए' उन्हें घटा-बढ़ा कर नहीं रखते। वे एक साधारण गाँव लेते हैं, साधारण विषय लेते हैं, साधारण पात्र,

लेते हैं और सहज ढंग से, उनकी सारी कमजोरियों और अच्छाइयों के साथ, कहानी कहते हैं और पाठकों के सामने एक सही चित्र प्रस्तुत कर देते हैं, जिसे पाठक देखता है और सत्य से साक्षातकार करता है और अनुभव करता है कि यह 'साधारण' भी कितना 'असाधारण' है, जो उसके मानस पर अपना नक्श छोड़ जाता है, जो उसे कुछ सोचने-समझने के लिए विवश करता है।

'आग और पानी' की कहानी ऐसी ही एक यथार्थ-वादी कहानी है, जिसे आप पढ़कर हमेशा याद रखेंगे। श्री तेजबहादुर चौधरी प्रगतिशील, मानववादी तथा उद्देश्य-पूर्ण कला में विश्वास रखने वाले हैं। उनका विश्वास है कि मानवता अजेय है—उसे किसी भी प्रकार की धर्मान्धता या कट्टरता पराजित नही कर सकती। उन्होंने अपने इस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए जिस दृष्टिकोण का चुनाव किया है, उससे अपने उपन्यास 'आग और पानी' के वस्तु और चरित्रों के सभी महत्वपूर्ण पहलुओं—बाहरी और भीतरी पहलुओं को उभार कर पाठक के सामने रखने और उनके लाक्षणिक तत्वों में छिपे हुए अन्तर्द्वन्द्वों को स्पष्ट करने में वह पूर्णतः सफल हुए हैं।

२२-२-५४ —भैरव प्रसाद गुप्त

लेखक के दो शब्द

भारत के लिये १६४७ का वर्ष स्वतंत्रता मिल जाने के विचार से जहाँ माथा उठा कर चलने का साल बना, वहाँ सन् ४७ आपसी भीषण रक्त-पात में सनकर, हिन्दोस्तान-पाकिस्तान में बँट कर, हमेशा के लिये लज्जा से झुके रहने का भी प्रतीक बना। मेरा आशय उस बँटवारे से नहीं, जिसकी याद हमें शर्म दिलाती रहेगी, बल्कि उस वक्त की साम्प्रदायिकता ने जो दोनों क़ौमों को अपनी-अपनी क़ौम के नाम पर क्या नहीं कर गुज़रने पर भड़काया और उसकी आड़ में जो भी किया गया, वह फिर भी करने वालों को कम ही लगा; उस करने में कसरें रह-रह गयीं, प्यास फिर भी प्यासी की प्यासी रह गयी, उससे है।

उस समय की दर्दनाक घटनायें यद्यपि बीत गयीं, परन्तु हमेशा के लिये नीले आसमान के नीचे, रात हो या दिन, उन दिनों की चीख-चिल्लाहट, हाय-पुकार, बावलों की तरह

घूमने के लिये छोड़ गयी हैं; इनको पाकिस्तान हो या हिन्दोस्तान, कहीं भी, किसी भी शहर, कस्बे, गाँव में कोई भी सुन सकता है। एक शरणार्थी आँखों से गरम-गरम आँसू अपने गालों पर बहाता हुआ आपको सुना जायगा। अब तो उनके किस्से पुराने पड़ गये, पर उन्हीं कहानियों में जहाँ वे घृणा और क्रोध से इन कुकर्मों को सुनायेगा, वहाँ वह किसी भले मानस का, जिसने ऐसी आग में पानी डाल कर उसे शान्त करना चाहा था, बखान भी आपको सुना देगा। उस समय उसके चेहरे को देखें, कितनी चमक उसकी आँखों में पैदा हो जाती है, और कितना गद्गद होकर वह उस अहसान का गीत गाता है!

ऐसे ही—

रावल पिंडी के मौलाना चमन खाँ भी थे, जिन्होंने अपनी कौम के नाम पर धब्बा न आने देने की भरसक कोशिश की, और उसी कोशिश में खुद कोशिश बन कर रह गये। अपने घर में अपने मोहल्ले के हिन्दुओं को छिपा कर अंत तक अपने द्वार पर संतरी की तरह बैठे आक्रमणकारी मुसलमानों को दूर ही रखा—प्रस्तुत पुस्तक उन्हीं की स्मृति में सन् १९४७ में लिखी गयी थी; मैंने चाहा कि उस मर्दे-खुदा को, अगर वह ज़िंदा हों, तो यह किताब दूँ, मगर ऐसा नसीबा मेरा और इस किताब का नहीं, जो उन तक पहुँच पाये—

जब कभी हवा पूरब से पच्छिम को चलती है, मैं यह किताब अपनी छत पर, एक मेज़ के ऊपर खोल कर रख

देता हूँ। हवा से इसके सभी पन्ने एक तरफ से फरफराते हुए खुलते चले जाते हैं, हवा धीमी पड़ने पर कोई पन्ना खुला रह जाता है, मैं समझने लगता हूँ कि मौलाना की आत्मा उसे देखने को रोके हुए है, तभी फिर फरफराकर पन्ने उलटने लगते हैं, यहाँ तक कि सारी किताब एक बार इधर से उधर लौट जाती है। हवा, जो उन पन्नों से लग कर सीधे पच्छिम की ओर जहाँ रावल-पिण्डी का देश है, चली जा रही होती है। मुझे सब्र आ जाता है, कि ऐसे ही, मैं उस क़ौम के खादिम की खिदमत में अपनी इस किताब के प्रत्येक पन्ने को हवा से छुआ-छुआ कर भेज रहा हूँ।

६।२।५४ —तेजबहादुर चौधरी

आग और पानी

१

"बाबा ! कुछ मिले ! एक रोटी का सवाल !! अन्धे को कुछ मिले ! एक रोटी !!" आवाज़ लगाता गुरदयाल सूरा बस्ती में, रात की अँधियारी में, लठिया के सहारे कीच-गारे से बचता हुआ चल रहा था। उसे जहाँ आहट मालूम होती, कि लोग-बाग बोल रहे हैं, या कोई पास में को होकर निकल रहा है, झट वहीं अपना गला फाड़-फाड़ कर माँगने लगता।

बस्ती के मकानों में दिये जलने से उनकी रोशनी खुले किवाड़ों, रोशनदानों से झाँक रही थी। आसमान में सीपियाले बादलों में चाँद, पत्ता तोड़ भागा चला जा रहा था। एक हल्का मंडल बादलों का, अपना रंग बदलते हुए, चाँद को घेरे हुए था। सर्दी और गरमी दोनों बराबर वज़न की थी।

जाओ न, सूरा।"

बड़ी कठिन समस्या थी, क्या उत्तर दे?—वह सोचने लगा पर ऐसा लगा जैसे उसके मस्तिष्क में विचार आने ही बंद हो गए हों, कि अलीजान ने फिर पूछा, "हाँ, तो बोलो।"

"क्या बताऊँ।—चुटिया कटे से काम चल जायगो?"

"अजी हाँ, मसजिद में चल के...... " आगे वह न कह सका। उसे हँसी आ गई, कि सूरा झट बोल उठा—"अरे यार, मजाक न करे! मोय तो बचा लिये, जो कहीं कछु होन लगो।"

"जा, तेरी कसम, तोय तो मरन न दंगो, और की बात नहीं कहता!"

"कैसे भला, बता तो?" अँधेरे में एकबार हर्ष से उसकी अंधी आँखें चमक उठीं और उसके गाल पीछे को सुकड़ कर रह गए।

'कैसे बताऊँ? मौका पड़ने पर, जब मैं बताऊँ, जैसा मैं कहूँ, वैसाइ करियो!"

अब सूरा ने अपनी लठिया को पीछे खींचा। अलीजान 'क्या?' कह कर रुक गया। दोनों खड़े होकर बातें करने लगे।

"हाँ, तो कैसे? बतादे, लल्ला!"

"देख, जब कोई बात होयगी, मैं तोय लिवा जाके अपने घर में बंद कहेउंगो, बस, किसी को कानों कान खबर न होयगी।"

"अच्छा ठीक!" धीमे स्वर में गुरदयाल ने उत्तर दिया। चुपचाप दोनों फिर चल पड़े।

गाँव में रत-जगा-सा पड़ गया। सब, दूर होने वाली रोशनी को देख रहे थे। कई-कई आदमी एक जगह खड़े होकर इसी की चर्चा करने लगे।

आधी रात को जब बस्ती वाले सो गए, चारों ओर अंधेरा हो

चुका था। भागता हुआ चाँद न जाने कहाँ था। बादलों में तारे दिखाई न देते थे। सामने से इमली के पेड़ पर जुगुनुओं की चमक-दमक हो रही थी। कभी-कभी बिजली चमक जाने से बादलों की पर्त की पर्त सफेद हो जातीं।

एक कम्बल सर से पाँव तक ओढ़े वह अपने घर से निकल पड़ा। हाथ में कुत्तों से बचने के लिए एक लठिया लिये लपक लिया। गाँव के उस सिरे पर कहारों के घर थे। एक घर के आगे खड़े होकर उसने आवाज दी, "रोशन ! ओ रोशन !!"

"कौन ?" अन्दर से उसके चाचा ने पूछा।

"अरे खोल तो किवाड़ !" फिर कम्बल वाले ने कहा।

रोशन का चाचा किवाड़ों के पास आकर उनको दरारों में से झाँकने लगा। उसने देखा कि एक आदमी सर से पाँव तक कम्बल-सा ओढ़े खड़ा है, वह बिना बोले उसे दरवाजों के दरारों में से देखता रहा। भय से उसका दिल धक्-धक् करने लगा। उसे शाम की बात याद आ गई। देर होती देख बाहर वाले ने कहा, "अरे सो गए फिर, खोलो भाई ?"

"कौन हो तुम ?"

"केवला ? अरे ,खोल तो ! मैं हूँ नूरुद्दीन !" बाहर वाले ने कह कर खाँसा और थूका।

केवला ने दरवाजा खोल दिया। नूरुद्दीन अन्दर चला आया,अन्दर आकर उसने दरवाजे की साँकल फिर लगा दी।

"क्या बात है, सरकार ? सलाम !" केवला बोला।

" सलाम। रोशन कहाँ है ?" नूरुद्दीन ने पूछा।

नूरुद्दीन बस्ती के उन लोगों में से था जो सदैव गाँव के मामलों में

कूद पड़ता उसके मकान के ऊपर एक बाँस के डंडे में तिरंगा झण्डा कुछ दिनों लहराया किया; तब उसे देश में काँग्रेस की विजय और तरक्की को देख कर जोश आ गया था; फिर बरसात आई, भींगकर झण्डा बाँस से लिपट गया, सूखने पर भी वह बाँस से लिपटा रहा, अंत को बाँस अधिक भीजने और सूखने से गल कर उसका नाश हो गया। जिस रस्सी से बाँस छत पर बाँध कर खड़ा किया गया था, वह टूट-टाट गई, केवल उसका टूटा-कटा हुआ भाग छज्जे की कड़ियों में अब भी हवा से झोंके खाता रहता है।

कंट्रोल की बला में फँसे हुए आदमी नूरुद्दीन के पास अपना दुःख-दर्द कहते, और वह उनकी मदद करता। कुछ थोड़े क्या, अधिकांश उसकी इन बातों के खिलाफ़ थे; उन्होंने कई बार जुम्मा की नमाज़ के बाद मियाँ नूरुद्दीन को समझाया कि इस्लाम की खातिर ये सब बातें छोड़ कर लीग में काम करने लग जायँ, मगर रंग न चढ़ सका।

वैसे वह एक मामूली बढ़ई था, सबेरे से शाम तक अपना आरी-बसुला चलाता और कमाता; गाँव का हर आदमी उसके पास आता रहता, इस से उसे रत्ती-रत्ती बात का पता लग जाता था। आज शाम को अशरफ़ ने उससे कहा कि रोशन कहार बाज़ार से अपनी जान बचाकर भागे आये हैं; गड़बड़ ज्यादा होने वाली है, अजब नहीं जो यहाँ भी कल न चल जाय। तभी से नूरुद्दीन रोशन से मिलने का इच्छुक था।

रोशन जो अंदर बैठा हुआ था, नूरुद्दीन की बातों के लहजे को सुनता और देखता रहा, अब उठ कर उसके पास आ गया और सलाम करके बैठ गया।

उसने शाम का सारा किस्सा नूरुद्दीन को सुनाया और यह भी बता

दिया कि एकाध दिन में क्या, कल ही तक यह आग इस गाँव में भी फैल जाय, कुछ अचरज नहीं, कह कर वह रोने लगा, उसने नूरुद्दीन की उंगलियाँ पकड़ लीं और बोला, "मियाँ, तुम्हारे गाँव में से, कहो तो अभी रात में ही कहीं भाग जायँ, बोलो, अपने बाल-बच्चों को कहाँ ले जायँ ! हम जानें, हमारी गंगाजी ! आज, किसी ने एक टूक भी तो नहीं खाया, कारीगर !"

"अबे तो यार रोते क्यों हो ? अल्ला मियाँ ने चाहा तो यहाँ कुछ भी नहीं होने का, और जब तक मैं हूँ तब तक......"

"तुम क्या कर लोगे भला ? जब दूसरे आदमी अड़ी पर उतर आवेंगे।"

सुनकर नूरुद्दीन सोच में पड़ गया। उसके मस्तिष्क में गजुआ की विधवा परसनदी, उनके तीन बच्चे, गुरुदयाल सूरा, बूढ़ा कन्हई चमार, सुखी की अकेली अन्धी ताई, बिहारी नाई की राँड बहन, जो जो अकेले थे, सभी याद आने लगे, कहाँ तक गिनें ? क्या हाल होगा इनका ? वह सोच न सका।

बाहर बादल घटाटोप छाये हुए थे, बिजली की चमक एक बार सब पर उजाला करके फिर जग को अंधकार में डुबो देती; सहसा फिर चमक उठती और पहले के दूना अँधेरा हो जाता। यही क्रम चल रहा था।

"तो फिर ?"

"का बताऊँ ?" शंकर बोला। घर की औरतें एक ओर खड़ी बातों को डरी-डरी-सी सुन रही थीं। यही थे बाल-बच्चे, जिनकी चिन्ता थी। ओढ़ने ओढ़े, लहँगे पहने ! उनके बच्चे, जो रोज़ निःसंकोच गलियों में खेलते फिरते थे, शाम ही से घरों में बुला लिये गए थे; उन्हें ताकीद

कर दी गई थी कि अपने घर से बाहर न निकलें, नहीं तो कोई दाढ़ी वाला मुसलमान पकड़ कर टाँगे चीर कर, बीच से दो कर देगा। बेचारे सहमे-सहमे सो गये थे।

एक जम्हाई लेता, आँखों, फिर नाक और अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरता हुआ नूरुद्दीन बोला, "तो देखो जिसे-जिसे मैं कहूँ, मेरे घर चले चलो, दो कोठे खाली हैं। उनमें जा छिपो, देखा जायगा, पर......"

"पर क्या? किसे-किसे कोठे में छिपाओगे मियाँ? सारा गाँव है!" रोशन ने कहा, उसकी आँखों के आँसू सूख चुके थे, पलकें भीज कर जुड़ी-जुड़ी सी हो गई थीं, सब थोड़ी देर तक सोचते रहे, निगाह सबों की नूरुद्दीन पर थी, देखो क्या उपाय बताता है?

कम्बल लपेटे नूरुद्दीन उकड़ूँ बैठा, सोचता गया, और सर हिलाता गया, उस सर हिलने में ही समस्यायें हल हो रही थीं, धीमर बैठे देख रहे थे। बहुत देर तक सोचने के बाद नूरुद्दीन बोला—"तो भाई, बात ये है कि जैसा मैं कहूँ, वैसा करो अब, तब तो......"

"तो तुम कहो!" केवला ने उसके पास और सरक कर पूछा।

"देखो रात अंधेरी है, अभी आधी रात नहीं हुई है, तुम ऐसा करो कि सारे गाँव के हिन्दुओं के घरों की औरतें तो मेरे यहाँ के कोठे में चली जाओ, उसमें आ जाएँगी तीस-चालीस औरतें; और मियाँ, दो चार दिन काटना भारी नहीं होता, और जितने मर्द हैं, उनके लिए अगर निमाजी अपनी के घर में तीनों कोठे खाली कर दे तो अस्सी-नब्बे आदमी आ जाँयेगे।"

"सो तो ठीक है," रोशन की बुढ़िया माँ ने कहा, "पर ये हमारे नन्हें-नन्हें बालक कहाँ जाएँगे? तुमने हमारी लोगन की बात तो बताय दई।"

"लो चाची, सुन," नूरुउद्दीन ने बुढ़िया से कहा, "तुम्हारे बाल-बच्चे, पहले तो तुम्हारे संग रहेंगे, और जो बड़े-बड़े होंगे वे मर्दों के संग, है बात ना ठीक ?"

"अब जैसी तुम करो, लल्ला ," बुढ़िया कहकर चुप हो गई।

"हाँ तो ठीक है। तो मैं जाके निमाज़ी से पूछूँ जो मान जाय, और किसी से कहना मती; क्योंकि देख बात खुल गई तो भी बुरा हो जायगा।"

नूरुद्दीन उठा और धीमे से बोला, "तुम लोग अपनी अकल से काम लो, घबराओ मती, मैं तो अभी आया जाऊँ हूँ।"

बाहर रिमझिम रिमझिम-सी शुरू हो गई थी। पच्छिम की तरफ अब भी आग लगने का हल्का-हल्का उजाला हो रहा था। हवा बन्द-सी थी, घरसे निकल कर नूरुद्दीन निमाज़ी के घर की ओर चल दिया।

२

अभी गाँव डेढ़ कोस दूर और था। दोनों अँधेरे में बादलों के नीचे अपने-अपने गधे हाँकते चल रहे थे। एक-एक लम्बा फौजी ओवरकोट कंधे से पाँव तक पहने, नंगे पाँव मुन्डासा बाँधे दोनों, अपने-अपने गधों के पीछे उन्हें लठिया से हाँके चले आ रहे थे। बिजली के कभी-कभी चमक उठने पर वे रास्ते की अटकल लगा लेते और फिर चल देते।

"तेरे पास बीड़ी-फीड़ी ना है, यार ?"

"है गी। आगे चल पेड़ तले खड़े होके पीयंगे, चला चल।" कह कर शब्बीरा ने अपने गधे की पिछली टाँगों पर एक लठिया जड़ी। बोझ के मारे गधों की गामची लचकीचल रही थी, उनके चूतड़ों की

खाल पट्टी के ज्यादा खिंचने से कटी-कटी-सी हो रही थी। नीची गर्दन किये गरीब बोझ से लदा हुआ बटिया-बटिया चला आ रहा था।

रहमत ने फिर कहा, "यार! निकाल ले बीड़ी और माचिस। तेरा पेड़ न जाने कब लों हाथ आयेगा। यहाँ तलब तो साली अब लग रही हैगी।"

"अच्छा यार," कहकर शब्बीर ने जेब में से बीड़ी का बंडल और दियासलाई की डिबिया निकालकर रहमत को थमाते हुए कहा, "यार, तुम्हें आज का चलना बहुत अखरा?"

"और नहीं तो क्या, देखो ना, लेना एक न देना दो! इन छुरों और भालों को भेजने के लिये भी हमी मिले? एक जी तो ये करे है मेरा कि सालों को यहीं किसी कुएँ में डाल के घर चलूँ, कह दूँगा दे आया।"

"और खत का जवाब!"

"बस ये बात न होती तो—खैर, चलो गाँव सामने आया जाय है," रहमत ने बीड़ी सुलगा कर, बीड़ी और दियासलाई शब्बीर को थमाते हुए कहा।

उसका दिल यही कह रहा था कि यह बुरा काम है, आखिर हिन्दू हैं तो फिर भी अपने ही भाई, उनके साथ दगा करनी बेजा है, मगर शब्बीर के साथ होने से मजबूर था। उसके दिल में एक बार यह विचार भी आया कि एक लट्ठ शब्बीर की खोपड़ी में जड़ दे, और उसे जान से मारकर फिर अपने छूरे-फूरे सब कुएँ में डालकर वापिस चलता बने, पर साहस न होने और न जाने क्यों वह ऐसा सोचकर फिर भूल गया। उसने देखा कि शब्बीर धीरे-धीरे गाता चल रहा है—

अँखिया मिला के जिया भरमा के, चले नहीं जाना।

हो ओ–ओ चले नही जाना !"

कि रहमत ने फिर कहा, "देख यार, तेरा भी तो दिल कहता होगा कि इस तरह बिना कसूर हिन्दुओं को मारना ठीक तो है नहीं, क्यों रे!"

"हाँ, पर क्या किया जाय ? जब ये ही साले हमारे पाकिस्तान को नहीं बनने देते, और हम पे अपना राज करना चाहते हैं, तो फिर बस होली खतम यारी, आजा भाई फिर यहाँ क्या देर है!"

"क्या पता, यार, क्या माजरा हैगा, जैसा हमें हुकुम हुआ वैसा करने लगे, असली बात तो मियाँ हमें तुम्हें भी मालुम नहीं"

"अरे सब मालुम हैगी यार ! ये काफिर न तो अँग्रेजों को चाहें न मुसलमानों को, तुझे क्या पता ? घाट से घर पे, घर से घाट पे, धोब लादी और चल दिये, मियाँ उन लोगों से पूछो जिन्हें ये लोग चैन से सोने नहीं देते।"

"किन्हें नहीं सोने देते ? तुझे पता तो है नहीं कुछ, बस चुप रह! ले बीड़ी पी।"

आधी पी हुई बीड़ी उसने शब्बीर के हाथ में थमा दी, दस-पाँच मोटी हल्की बूँदें, उनके हाथ-उँगलियों, नाक, गाल, कानों पर पड़ चुकी थीं; वे समझ रहे थे कि बारिश शुरू हो गई, गधों को और कर्रा करके हाँकने लगे।

मसजिद के पीछे दोनों गधों को बाँध कर, वे एक दूसरे के सामने खड़े हो गये। शब्बीर ने रहमत से खुस-पुसाते हुए कहा, "देख, तू तो यहाँ खड़ा रह और मैं लाऊँ लिवाके नियाजली (नियाजअली) को।"

शब्बीर अपने लबादे-से को लपेटे, बग़ल में लाठी सँभाले, एक

गली में घुस गया, दीवार की जड़ में एक जुगनू चमक रहा था, शब्बीर उसे देखता हुआ आगे बढ़ गया।

सामने से कम्बल ओढ़े नूरुद्दीन आ रहा था, शब्बीर ने उसे देखा जब बिजली चमकी 'ये लम्बे कम्बल में कौन ?' कि नूरुद्दीन ने उससे पूछा, "कौन है भाई ! अरे कौन है ?"

"परदेसी हैं। नियाजली का घर कहाँ को है ?"

"क्या काम है उनसे ?" कह कर नूरुद्दीन उसके सामने अड़कर खड़ा हो गया।

शब्बीर ने देखा कि ये कम्बलवाला भी मुसलमान है, झट सलाम करके बोला, "नियाजली के पास जाना था।"

"क्या काम था ? तुम्हारा मकान कहाँ हैगा ?" ग़ौर से उसे देखकर नरमी से उसने पूछा। पर ऐसे समय में एक अजनबी मुसलमान को गाँव में इस तरह घूमते हुए देखकर उसे शक होना आरम्भ हो गया। बारिश होने लगी थी, झड़-सी लग गयी। सामने के टीन पर बूँदों के पड़ने से पड़-पड़ शब्द हो रहा था।

शब्बीर ने आखिर कहा, "नसीरपुर,"

"और आपका नाम ?"

"नाम से क्या लोगे ?"

"आपको इस वक्त नियाजअली से आखिर काम क्या था ?"

"क्या बतावें ? मकान बता दो बस झगड़ा खतम।"

"अच्छा देखो, सीधे चले जाओ, आगे एक कुँआ आयेगा वहीं सामने उनकी बैठक है, आवाज लगा लेना, कोई और भी है तुम्हारे संग ?

"नहीं" कह कर वह चल दिया।

नियाजअली उस गाँव के लिये-दिये-से लीगी कार्यकर्ता थे। वास्तव

में लीगी भी नहीं, न कांग्रेसी, न कुछ। हाँ मुसलमानों की मण्डली में हर जगह सभी रस्मों-रिवाजों में प्रमुख भाग लेते। गाँव के मुसलमान बच्चों के लिए उनके माँ-बापों से कहते, "मियाँ, औलाद को तो हाफिज बनाओ, निमाज़ सिखाओ, कलाममजीद पढ़ाओ! कैसे मुसलमान हो? जिस बच्चे ने कलामे पाक न देखा, समझो, उसने ज़िन्दगी में कुछ न किया।" नियाजअली के जोर देने पर एक मुल्ला मसजिद में इमाम हुआ और बच्चों को अरबी पढ़ाने लगा। इन सब बातों के ढंगों से उनकी पूछ बिरादरी में ज़रा अच्छी थी।

नूरुद्दीन आगे चल पड़ा, पर उसे शक हो गया था कि हो न हो, यहाँ गाँव में आग लगने में अब देर नहीं, और इसीसे ये नियाजअली की खोज में फिर रहे हैं।

शब्बीर देखता-भालता चला, कुएँ के पास आकर उसने चारों ओर आँखें फाड़-फाड़ देखना शुरू किया, पर कुछ पता न लग सका, कि बैठक कौन-सी है, किधर है। पानी उसी तरह अँधेरेमें, अलसाया हुआ, मन मारे हुए बरस रहा था, शब्बीर के तलुवे ठण्ड से सुन्न हो गये थे; एक तरफ को होकर वह कुएँ से बचता हुआ चला, कि बिजली की चमक में उसने देखा, आगे एक छोटे से पेड़ की डाल झुकी हुई है, उसके पीछे एक झोंपड़े का छप्पर है। वह मुड़ा, दूसरी बार बिजली चमकने पर उसने देखा कि सफेद बैठक-सी कुएँ के उस पार अँधेरे में खामोश सब्र के साथ भीग रही थी। लपक कर शब्बीर उस ओर चला; बैठक के आगे चबूतरा था, अँधेरे में ठोकर खाकर वह गिरने को हुआ, पर सँभल गया।

दरवाजे के पास जाकर उसने आवाज दी, "अरे मियाँ नियाजली खाँ!"

उसकी आवाज बरसते पानी की तड़-तड़में खो-सी गई। उसे ऐसा लगा मानो उसकी आवाज सिवाय उसके और किसीने नहीं सुनी। लाचार फिर एक और आवाज दी "अजी मियाँ नियाजली साहब !" इस बार उसने जोर लगाया था, शब्द मोहल्ले में गूँज कर रह गये। एक कुत्ता पेड़ की तरफ से निकलकर भौंकने लगा। शब्बीर ने अपनी लठिया सँभाल ली।

उसने फिर सोचा, क्या वाहियात धँधा लेकर हम लोग चले? दुनिया सो रही है चैन से, और एक हम, जो घर से दूर दूसरे के घर के आगे खड़े भीग रहे हैं। क्रोध उसे आ ही रहा था, उधर वह कुत्ता भौंकते-भौंकते उसके पास को आया। अँधेरे में उसने अपनी लठिया उसकी तरफ घुमा कर चलाई। कुत्ता बच गया, थोड़ी देर के लिए उसका भौंकना बंद हो गया, पर दूर पेड़ के नीचे जाकर वह फिर भौंकने लगा। शब्बीर ने अब उसकी परवाह न की, और किवाड़ों की दरार में से अन्दर झाँका। कोई नहीं दिखाई दिया। अन्दर चौपट अँधेरा था। उसने फिर आवाज लगाई।

अन्दर नियाजअली की बीबी के कानों में शब्द पड़े। बड़बड़ाती हुई उसने मियाँ को उठाया, "उत्ते रात में भी तो चैन नहीं लेने देते, मरजां इनका नास जाय, खुदा गारत करे मुओं को !"

"क्या बात है ?" मियाँ ने पूछा।

"अजी तुमको कोई बाहर बुला रहा है, जाने कौन हैगा ? मुझे दीखे पानी बरस रहा हैगा, भला तुमने आँगन में से चारपाई और मेरा कुर्ता उठा लिया था ? अरे, बन्ने की जूती तो न भीग रही हैगी ?"

"ना, अः सब खपरैल के नीचे रख आया था।"

बाहर से फिर आवाज आई। अबकी बार नियाजअली "होत !

आया ठहरो !" कहकर चारपाई से उठ खड़े हुए। और चलते समय बीबी से कह गए, "देखो तुम मत उठना ठण्ड लग जायगी।"

अँधेरे में टटोलते हुये वे बैठक में आ गये। सरसों के तेल का दिया ताक में था, वहीं ऊपर से दियासलाई लेकर चिराग़ जला कर, उन्होंने अन्दर से पूछा, "कौन है भाई, नाम बताओ।"

"अजी मैं हूँ शब्बीरा ! मैं नसीरपुर से आया हूँ सलाम ! बाहर से शब्बीर बोला।

"अच्छा, अच्छा !" कहते-कहते उन्होंने साँकल खोल किवाड़ खोल दिये। फिर शब्बीर सलाम करता हुआ अन्दर आ गया। और झटपट एक खत निकाल कर उसने नियाजअली के हाथ में दे दिया। खत लेकर वे उससे पूछने लगे, "ऐसी क्या बात है जो रात में ही चल पड़े ? और है कोई साथ ?"

"हाँजी, एक धोबी और है, और दो गधे हैं उसके।"

"गधे ? गधे कैसे ? क्या सवार होकर आये हो ?"

"नहीं, मुल्लाजी" फिर धीमे से बोला, " उनमें सवा सौ छुरे और एक पर पचास साठ दस्ती भाले हैंगे।"

छुरे और भालों का नाम सुनते ही नियाजअली का दम सूख कर रह गया। उन्हें शब्बीर से डर लगने लगा। अपने लम्बे लबादे में, मैला मुंडा सा बाँधे, शब्बीर पिशाच की तरह उनके आगे खड़ा उनकी सूरत को देख रहा था। यद्यपि नियाजअली जबानी जमा-खर्च में अवश्य ही हिन्दुओं के खिलाफ काफी जहर उगल चुके थे, पर उन्हें यह पता नहीं था कि इस प्रकार उन्हें अपने पड़ौसियों के सीनों में छुरे भोंकने को मिलेंगे, भला कैसे हो सकेगा उनसे ऐसा काम ?

एक पंतगा दीपक के पास आकर उसके गिर्द चक्कर काटने लगा,

फिर एकाएक ताक में उसके निकट दीवे पर बैठकर परों को गुंजारने लगा। उसकी भन्नाहट साफ सुनाई दे रही थी। नियाजअली बाट देखने लगे, कि कब वह पतंगा दीपक की लौ से टकरा जाय, और जल कर तड़फने लगे, कि सहसा लौ की गरमी से वह उड़ कर फिर ताक पर एक तरफ बैठ कर सरकने लगा। उनका ध्यान फिर हट कर उस पर जम गया कि सहसा अपने हाथ के खत का ध्यान आकर उन्होंने खत खोला और पढ़ने लगे, उसमें लिखा था—'जनाब मौलाना नियाज़ अली साहब, तसलीम! अपनी मजलिस के अहदनामे और तजवीज के मुताबिक़ आपको मुत्तला किया जाता है कि कल शाम से ही अपने यहाँ की हिन्दू जमाअत पर इन भेजे हुये हथियारों से हमला कर दें, और जवान और बूढ़े, हर उम्र के बालिग़ और नाबालिग़ को जहाँ भी हों, कत्ल कर डालें। उनकी औरतों को भी जो काबिल शादी हों, जबरन मुसलमान बना कर अपने मजहब में दाखिल कर लें। इस अमर का ख्याल रखें कि जो मजहबे इस्लाम कबूल कर ले उनको कुछ कहा न जावे। अव्वल तो आप ज्यादा से ज्यादा को मुसलमान बनाने में कामियाबी हासिल करें। आपकी इमदाद के लिये कल शाम को दो-सौ जवानों का दस्ता-मुसल्लह (हथियार बन्द) पहुँच कर काम शुरू कर देगा। अपने गिरोह के आदमियों की तैय्यारी आप जल्द शुरू कर दें।

कौम का खादिम

अब्दुस् समद

खत पढ़ते-पढ़ते मौलाना का खून उनकी नसों में रुक गया। अपने दिल की धड़कन उन्हें साफ सुनाई देने लगी। वह पतंगा दीपक के पास पहुँच कर मौलना की तरह खामोश एक टिक चिराग की तरफ देख रहा था। बाहर पानी उसी तरह पड़ रहा था, बिजली कभी-कभी चमक

कर रह जाती।

'क्या आफ़त मैंने ले ली ? उठ कर न आता तो भी अच्छा था' सोचकर मौलाना के चेहरे पर एक तरह की बेबसी सी छाने लगी। जिसे अपने भरसक प्रयत्नों से वे अपने चेहरे पर आने नहीं देना चाहते थे। पतंगा पूर्ववत् टिकटिकी लगाए बल खाती हुई दीपशिखा की ओर अब भी देख रहा था।

देर होती देख शब्बीरा ने कहा, "हाँ तो फिर बताओ ?"

"क्या बताऊँ ? दूसरा आदमी कहाँ है ? उसे भी तो लाओ !"

"उसे तो मसजिद के पीछे खड़ा कर आया हूँ। लिवा लाऊँ ?"

"हाँ जाओ !" इस तरह कहा मानो नियाजअली का शरीर नहीं बोला हो।

वह चल पड़ा, और गली की ओर मुड़ा, परन्तु फिर आकर उसने मौलाना से पूछा—"और उन गधों को भी लिवाता लाऊँ ?"

"हाँ !" बहुत देर बाद कह कर उन्होंने अपना पीछा-सा छुड़ाया। उन्हें लगा जैसे वे फिर अकेले के अकेले रह गए हों—कुछ ऐसे कि जिनको गाँव के हिन्दुओं को फाँसी देने के लिये चुन लिया गया हो, और वह फाँसी देना उनके बस की न हो। चिराग़ का उजाला सामने कुएँ के पास की छत पर पड़ रहा था, उसी रोशनी में बाहर बूँदों का पृथ्वीकी ओर गिरने का ताँता-सा बँधा हुआ दिखाई दे रहा था। हर बूँद धरती पर ताल मारती उतरती। असंख्य बूँदों की तालों का एक मिश्रित-सा 'तर-तर' शब्द पृथ्वी से उठ रहा था।

नियाजअली ने उस ख़त को दोबारा खोला, और एक एक शब्द को फिर से पढ़ा। हर शब्द उनकी बस्ती के हिन्दुओं की जान का गाहक था। उनकी आँखों में गाँव के सारे हिन्दुओं की सूरतें, उनके

नाम, उनकी बहू-बेटियों बाल-बच्चों की सूरतों के नक्शे खिंचते चले गये। अपाहिज और विधवा, रोगी और बूढ़े हिन्दुओं की सूरतें उनके ख्याल से न उतरीं। एक भयानक सा दृश्य उनकी कल्पना में बनने लगा; जिसमें गाँव भर में हा-हा-कार मच उठा। उसी में बूढ़े कन्हई चमार, गुरदयाल सूरा, दौलिया कुम्हार, सभी के घरों को मुसलमानों ने घेर लिया; आग लगा दी, लोग चिल्लाकर भागने लगे; भागतों पर ईंट, पत्थर, छुरों और भालों से हमला होने लगा। फिर जैसे दोनों गधों पर लदे छुरे-भाले बँट गए हों, जैसे उनकी औरतें घरों से निकल भागीं; उन्हें बुरी तरह बेइज्जत......

वे आगे न सोच सके, और पास पड़ी एक चारपाई पर माथा पकड़ कर बैठ गए, उनका कलेजा हिल उठा दिल धक्-धक् करने लगा। ख़त उनके हाथों में अब भी था, उसको फिर उन्होंने पढ़ा। अन्त तक 'क़ौम का ख़ादिम अब्दुस्समद' पढ़ कर उन्होंने ख़त जेब में रख लिया।

अब्दुस्समद नसीरपुर के एक छोटे से जमींदार थे। रिआया हिन्दू-मुसलमान, दोनों की लगाम उनके हाथ से निकल चुकी थी। लगान भी लोग उनके पास डाक से, मनीआर्डर से भेज देते थे। वे फिर रिआया को क़ाबू में लाना चाहते थे। उनको भरोसा था कि उनकी यह नीति शायद कारगर हो जाय। नीति यह थी कि मरें हिन्दू और भय छा जाय ग़रीब मुसलमान पर भी। अजब खोपड़ी थी उनकी। उन्हीं के प्रोत्साहन से नसीरपुर में आज सैकड़ों घर उजड़ गए थे। घरों के जलने से जो उजाला हुआ था, वह उजाला अब्दुलसमद की जमींदारी और अंग्रेजी राज्य की नींव की मज़बूती दिखाने के लिए काफ़ी था कि नहीं, इसका उन्हें पता नहीं था।

आग और पानी

नियाज़अली का अब्दुस्समद बहुत लिहाज़ करते थे, इसी से नियाज़अली उनकी बात टाल नहीं सकते थे। बड़ी मुश्किल का सामना था उनके लिये। सोचते-सोचते उन्होंने तरकीब सोची कि बैठक के दरवाज़ों को बन्द करके सो जाऊँ, अपने आप दोनों आवाज़ लगा-लगा कर थक जायँगे। किसी तरह तो पिंड छूट जायगा उनसे।

उन्होंने झट दरवाज़ा बंद कर लिया और चिराग़ में एक ज़ोर की फूँक मार दी। अंदर एक ठण्डा अंधेरा फिर हो गया। बाहर पड़ने वाली बूँदों का गूंगा-सा शब्द हो रहा था, दीपक के तेल की चिड़ांध बैठक भर में फैल गई। अँधेरे में जलता हुआ दीपक का फूल थोड़ी देर तक अँगारे की तरह जल कर पट से बुझ गया। मौलाना लौट कर वहीं एक चारपाई पर जम कर बैठ गए। और शब्बीर और दूसरे आने वाले और उनके गधों का इन्तज़ार करने लगे।

भीगता हुआ शब्बीर फिर लौटा। बारिश ज़रा और तेज़ हो गई थी। गली में हल्की कीच-सी थी। लाठी से रास्ते को टोहता हुआ वह बढ़ने लगा। अब उसे भी ये सब बातें अखरने लगीं। नियाज़अली के चेहरे की तरफ देख कर उसने भाँप लिया था कि उनके बस की बात नहीं थी यह। और ना ही वे चाहते थे कि ऐसा करना पड़े; पर न जाने किस दबाव से? शायद नसीरपुर के अब्दुस्समद के दबाव से उनको सब कुछ करना पड़ रहा था। अब शब्बीर चाहता था कि किसी तरह ख़त का जवाब लेकर कहीं कमर सीधी करने को साये का ठौर मिले।

दोनों गधे लदे खड़े भीग रहे थे। रहमत पास के लिसोड़े के पेड़ के नीचे अपने लम्बे कोट में दुबका बैठा था। बूँदे पेड़ के पत्तों से निचुड़ कर उस पर टप-टप पड़ रही थीं, नीचे पाँव घुटनों तक ठण्डे हो गए थे। वह भी बैठा-बैठा ऊब गया था। 'शब्बीरा न जाने कहाँ जाकर मर

गया !' ज्यों-ज्यों देर होती गई, त्यों-त्यों उसकी बेताबी बढ़ती गई। अजब बेवक़ूफ़ी में रहमत फँस गया। अपने ऊपर भी उसे क्रोध आने लगा। गधे कभी एक टाँग उठा कर धरती पर मारते, फिर दूसरी टाँग का सहारा ले कर पहली टाँग को आराम देने के लिये ढीला छोड़ देते थे। वे बेचारे और भी परेशान थे।

लगभग पौन घण्टे में शब्बीर लौट कर आया। उसने गधे तो देख लिये, पर रहमत को देख न पाया। वहीं खड़े होकर धीमे से उसने पुकारा, "रहमत !"

रहमत क्रोध में था, चुप रहा। फिर उसने पुकारा, "रहमत !" वह फिर भी चुप खामोश बैठा रहा। फिर शब्बीर ने उसे देख लिया, और उसके क़रीब आकर बोला, "रहमत !"

"क्या कहे है साले ? मार दिया जाड़े में !"

"और क्या मैं कोई अलाव सेंकने गया था ! वाह जी ! अजी चलने को पहले मना क्यों न कर दिया ?"

रहमत सुनकर चुप रहा। शब्बीर ने उससे फिर कहा, "अच्छा तो उठो चलो।"

"मैं नहीं जाता, जाओ।"

"तो यहीं बैठे रहोगे ?"

"हाँ।"

"अबे, उठ यार, तू तो नखरे करने लगा," और उसका हाथ पकड़ कर उसे उठा लिया।

वे दोनों फिर चल पड़े। गाँव की एक गली में घुसने पर आगे-पीछे चुपचाप दोनों चल रहे थे।

३

नूरुद्दीन आगे चलकर फिर रुक गया, मुड़ कर उसने एक बार फिर शब्बीर की ओर देखा, कि कहीं वह उसके पीछे-पीछे तो नहीं आने लगा। थोड़ी देर ठहर कर उसने जब देख लिया कि वह आदमी चला ही गया, तब वह आगे बढ़ा।

निमाजी नूरुद्दीन का यार था, और जिगरी यार। उनकी आपस की कोई बात छिपी नहीं रहती थी। दोनों बढ़ई थे। निमाजी सीधा आदमी तो था नहीं, पर जिस बात को नूरुद्दीन समझाकर कह देता, उसे फिर टाल देना उसके लिए बहुत मुश्किल था। दोनों आपस में रिश्तेदार भी थे। निमाजी नूरुद्दीन का मौसेरा या फुफेरा भाई या कुछ ऐसा ही था। यह भी एक ऐसी बात थी, जिनका पास उन्हें रखना पड़ता था।

नूरुद्दीन जब निमाजी के घर पहुँचा, उसने देखा, अन्दर चिराग़ जल रहा है, और उपले के धूँए की गंध बाहर की खपरैल में फैली पड़ी है। निमाजी का कुत्ता नूरुद्दीन को देख कर एकबार भौंक कर चुप हो गया।

"अरे निमाजी ! ओ निमाजी !!" आवाज लगाकर नूरुद्दीन ने किवाड़ों को हथेली से थपथपाया कि अलीजान निमाजी का लड़का, वहीं से बोला, "चाचा ?"

और फिर "अरे हाँ, खोल तो लल्ला !" निमाजी बोला।

किवाड़ खुल गए। भीगा हुआ कम्बल ओढ़े नूरुद्दीन निमाजी के आगे जा खड़ा हुआ। निमाजी के सीने में दर्द-सा था। घर के सारे सेंका-तूड़ी कर रहे थे। तारपीन की-सी हल्की-हल्की गंध कोठरी में से आ रही थी।

"आ जाओ !" निमाजी बोला।

"क्या हुआ ! दर्द है क्या ?" क़रीब आकर नूरुद्दीन ने पूछा।

"आज साँझ बाजार से लौटते सर्दी-सी लग गई।"

"क्या लगाया, तारपीन ?"

"हाँ, एक शीशी में रखा था, मैंने कहा लाओ इसे ई मल के सेकें।"

"तो कुछ आराम है पहले से ?"

"हाँ, है।"

"अल्ला चाहेगा तो सब ठीक हो जायेगा, मैं तो एक बड़े जरूरी काम से आया था, पर क्या कहूँ ?" तुम्हारी तकलीफ को देख के मेरी तो हिम्मत-सी टूट गई।"

"क्या बात हैगी ? ये तो ऐसे ही मालिश करवाने-सिकवाने लेट गया था। तकलीफ ऐसी नहीं जो......बात कहो तुम, मैं नहीं करूँगा तो लौंडा अलीजान तो हैई।"

"क्या बताऊँ, बात है भी और नहीं बी (भी)।"

"क्या है यार ! कुछ कहो तो सही।"

"अच्छा किसी से कहोगे तो नहीं ?"

"फिर वही बात ! तुम्हारी कोई बात मैंने आज लों काहू ते कही कभी ? हाँ तो फिर क्या बात है ? कहो !"

"देखो नसीरपुर में झगड़ा हो ही गया, तुम्हें पता है ही, हिन्दू मुसलमानन में, नाहक में, हिन्दुओं को हमारे बिरादर जान से मार रहे हैंगे; उनकी धी-बेटियों की आबरू न छोड़ी उन्होंने। तो बात ये है कि ये आग यहाँ भी फैले बिना नहीं रहेगी, और ताज्जुब नहीं जो कल ही चल पड़े; इससे हम तो ये चाहें हैं कि अपने यहाँ के जितने हिन्दू हैं, जहाँ तक हो, उन्हें बचावें; तुम्हारी क्या सलाह है ?"

"ठीक है तेरा ख्याल बेटा," निमाज़ी की माँ ने कहा, और देख! नूरा (नूरुद्दीन) भला क्या मिलेगा? ये हैंई कित्ते (हैं ही कितने)? ये तो जरूर कर बेटा, भला देख!'

"मौसी इसीसे मैं चाहूँ हूँ कि रातोंरात मैं अपने एक कोठे को खाली करके दस बीस तीस जो भी औरतें हों, हिन्दुओं की, सबको अपने यहाँ छिपा लूँ, और जो तुम अपने तीनों कोठे, जिसमें लकड़ी-वकड़ी भरी हैं, खाली कर लो तो सारे आदमी-आदमी आ जाएँगे, और तुम्हारी समझ में जैसा आवे बताओ, पर करना है हमें तुम्हें इस काम को, समझ लो!"

बात सुन सभी थोड़ी देर के लिये चुप हो गये, परिस्थिति भयंकर थी। निमाज़ी बोला, "गाँव में और किसी के कोठे खाली शायद न होंगे, खैर।" इसके बाद अलीजान ने कहा, "क्यूँ चाचा, जो पता लग गया मुसलमानों को तो खैर नहीं सबकी।"

"पता कैसे लगेगा, अरे जब हमीं नहीं कहेंगे तो पता कैसे लगेगा?"
नूरुद्दीन ने कहा, और फिर बोला, "मुझे जवाब दो और सुनो एक बात।"

"क्या?" कहकर निमाजी उठ बैठा।

"अरे तुम पड़े रहो, यार!"

"नहीं जी, सब ठीक है तुम बात कहो।"

"बात ये, कि जब मैं आ रहा था तुम्हारी तरफ को अभी, तो मुझे एक आदमी नसीरपुर का मिला, वो तो अचानक सामने आ गया। मैंने उससे पूछा 'कैसे घूम रहे हो?' बोला—'नियाजअली का मकान बता दो।' बस मैं समझ गया कि है जरूर कुछ बात।"

"फिर?" निमाज़ी ने पूछा।

"फिर क्या ? मैं इधर चला आया तुम्हारी लंग, (ओर) और वो चला गया नियाजअली की लंग।"

"अरे जा !" बड़े अफसोस से निमाजी बोला, "बस यहाँ गलती कर गए, काम खो दिया, यार! उस साले के पीछे पीछे जाते, बातें सुनते उसकी और मौलाना की, जाने क्या बातें हुई होंगी ?"

"कहो ठीक! पर अब क्या करें ?"

निमाजी का वही हाल हुआ जो नियाजअली का शब्बीर से भेंट करके हुआ था, निमाजी ने सोचा, अगर मैंने अपने घर में आदमियों को छुपा लिया और गाँव के लोगों पता लग गया, तो बिना मौत मारे जाएँगे, क्या उपाय करें ? दर्द की एक चसक उठी, और उसने अपना हाथ अपनी पसलियों में रख कर धीरे से कराहा–'ओ अः या अल्ला !'

"दर्द है अभी यार ?" नूरुद्दीन ने पूछा।

"हाँ, कभी कमर चसक–सी मार जाय है।"

थोड़ी देर ठहर कर नूरुद्दीन ने फिर पूछा, "तो फिर बता भाई !"

"क्या बताएँ ? सोच ये है कि अगर पता लग गया तो ?"

"नहीं लगेगा पता अव्वल तो, और भई, मैं भी तो अपने घर में छिपाऊँगा। और जो लग गया पता तो फिर देखी जाएगी। यहाँ तो सोच लिया है मियाँ, कि हम इन्सान हैं, अपने पड़ोसी की वैसे भी तो मदद करनी पड़े है। फिर बात ये है कि अपने-अपने घर में सब को ताकीद कर दो कि मुँह से बात न निकालें; और जरूरत क्या किसी से कहने की ?"

बड़े असमंजस में निमाजी और उसका लड़का अलीजान पड़ गये। "तू जान, भैय्या !" निमाजी ने आखिर कहा, "जो करना हो तो बस करने लगो, देर फिर ठीक नहीं।" फिर अपने घर वालों की तरफ मुँह

करके बोला, "देखो ये काम है बहुत टेढ़ा; जिसने जरा भी जबान हिलाई, फिर चाहे मेरा लड़का क्यों न होगा, साले को ठौर जान से मार दूँगा ! अच्छा नूरुद्दीन, हो गई बात। अलीजान को ले जाओ, और करो काम, पर......"

"पर क्या?"

"एक फेरा नियाजअली की तरफ लगा के टोह तो लो क्या बात है?"

"अच्छा मैं तो जाय रहा हूँ, खबर करने हिन्दुओं में या; फिर नियाजअली के जाऊँ?"

"नियाजअली के जा भैय्या, फिर करिओ ये काम, जाने क्या बात हो?"

"अच्छा तो तुम कम से कम तीनों कोठे तो खाली करवाओ, जाने क्या बखत आ जाय।"

"अच्छा, अच्छा।" कहकर निमाजी लेट गया। नूरुद्दीन फिर कम्बल ओढ़ कर चलने लगा। पीए हुए तम्बाकू का एक हल्का सरूर और गरमाई-सी उसके बदन में थी। जिस काम को वह करने जा रहा था, उसे पूरा भरोसा था कि वह ज़रूर सफल होगा। बूँदें फिर उस पर पड़ने लगीं।

नियाजअली के मकान पर जाने की बजाय पहले वह रोशन कहार के घर पहुँचा। वहाँ घर में एक चिराग टिमटिमा रहा था। कहारिन और कहार जल्दी-जल्दी अपने सामान, जेवर, बर्तन बाँध रहे थे। बच्चों को एक गूदड़ में लपेट कर सुला दिया था। अनाज की एक गठरी बाँधी जा रही थी, कि नूरुद्दीन ने आवाज दी।

"कौन?" रोशन की बहू ने धीमे से कहा, "कोई है बाहर देखो

तो," वह बोली,

"रोशन !" फिर नूरुद्दीन ने आवाज़ दी।

"नूरुद्दीन आये दीखें," कहकर रोशन ने झटपट किवाड़ खोल दिये।

"क्या कर रहे हो ?" नूरुद्दीन ने पूछा।

"कुछ ना भय्या, ऐसे ही भागने को सोच रहे हैंगे, और क्या ?"

"वाह ! नहीं यार ! अच्छा, देखो मैं सब तय कर आया हूँ, तुम घबरा क्यों रहे हो ? एक काम करो, तुम दो-तीन आदमी हो, जल्दी से गाँवके हिन्दुओं में खबर कर आओ कि यहाँ घपला होने वाला है, इससे हिन्दुओं में औरतें-औरतें तो मेरे घर में चलने की तैयारी कर लें, और मर्द-मर्द निमाजीके घर में। बस अपने जेवर बर्तन, थोड़ा अनाज जाड़ों के कपड़े; देखो ! ज्यादा सामान न करें, इतना आयेगा कहाँ ? और मैं जरा एक काम से जाय रहा हूँ। मेरी बात झूठ ना मानना !" और चलने को हुआ।

"अजी भला ! पर ये तो बताओ ?" केवला ने टोक कर पूछा।

"क्या ?" नूरुद्दीन रुक कर बोला।

"ये कि सभी एक ठौर रहेंगे, या लुगाई अलग, मर्द अलग; उनका पानी पत्ता ?"

"अरे यार ! अजब बेवकूफ़ आदमी हो ! सब हो जायगा। मरने से तो अच्छा है कि एक-दो रोज भूखा रह लो। देखो, इन बातों को छोड़ो। मैं इतने में लौट कर आऊँ। तुम घर पर जाकर कह आओ, सब तैय्यार हो जायें, दो घंटे में। फिर जब मैं कहूँ चले आवें। सुबह होने से पहले-पहल सब आय छिपें। नहीं तो मैं जिम्मेदार नहीं।"

"अच्छा साहब ! अब देखी जायगी, तुम्हारा ई कहना करेंगे।"

केवला बोला।

नूरुद्दीन चल पड़ा। अपने घर आकर एक कोठा खाली करने को कह कर नियाज़अली की बैठक की ओर चला। इन सब कामों में उसे काफ़ी वक्त लग गया था।

बूंदें पड़ रही थीं। सर्दी के मारे, उनके हाथ-पाँव ऐंठे जा रहे थे। फ़िर भी एक उत्साह और लगन उनके मन में ऐसी थी कि सर्दी को झेलने में उन्हें अधिक कष्ट नहीं मालूम हो रहा था। हजारों विचार उनके दिमाग में आ जाना चाहते थे, पर न आते। सामने नियाज़अली की बैठक एक बार बिजली में चमक गई। नूरुद्दीन कुएँ की मन के पास वाले पेड़ के नीचे खड़ा होकर भीगने लगा। बिजली फिर चमकी। उसने देखा कि नियाजअली की बैठक आज इतनी डरावनी और शीतल है कि भय लगता था। उस ओर देखकर डर लगता था। धड़धड़ा कर बिजली उस पर ही क्यों नहीं टूट पड़ती? थोड़ी देर बीती। सब ओर सन्नाटा छाया हुआ था, बूँदे एक सी चाल से निरन्तर ऊपर से आ रही थीं; पेड़ के नीचे एक लक्कड़ पर नूरुद्दीन जम कर बैठ गया।

सहसा दूर गली में एक कुत्ता भौंकने लगा। शब्बीर और रहमत अपने गधे हाँकते हुए जा रहे थे, कुत्ता उन्हें ही देखकर भौंक रहा था।

बैठक के आगे आकर शब्बीर रहमत से बोला, "ये रहा कूँआ।"

"और बैठक कहाँ?"

"ये सामने, अरे! दीया तो बुझ गया मुझे दीखे।"

शब्बीर ने गधे रोककर बैठक के दरवाज़े के पास आकर आवाज दी, "मौलाना!"

नियाज़अली चारपाई पर बैठे उनकी आहट पा चुके थे। उनका दिल हिलने लगा। अपने सोचे हुए विचारों के अनुसार वे न बोले।

शब्बीर ने फिर पुकारा—"अजी मौलाना नियाज़अली !"

नियाजअली को क्रोध आ गया, जब उसने उनके नाम के आगे 'खाँ' या 'साहब' नहीं लगाया, पर चुप फिर भी रहे। बाहर शब्बीर ने आपही आप रहमत को सुनाते हुए कहना आरम्भ किया, "यार बड़ी कसर की बात हुई ये तो ! मौलाना फिर सो गये। अजी मियाँ मौलाना !" इसबार आवाज जोर की दी।

भीतर मौलाना दम साधे बैठे रहे। उनकी बीबी अन्दर पड़ी-पड़ी बड़बड़ाने लगी, 'जाने नासगये कहाँ ले गये उन्हें ? एक घड़ी को तो चैन नहीं इन्हें ! दिनभर चैन नहीं, रात भर चैन नहीं, जाने क्या गिटर-पिटर करते रहे ? मेरी समझ में नि (नहीं) आता।'

कि मौलाना चुपके से उठे और सरक कर अंधेरे में चल पड़े बीबी को खामोश करने। अन्दर जाकर उन्होंने बीबी का हाथ पकड़ा कि बीबी जोर से डर कर घिघिया उठी।

"अरी चुप !" बहुत धीरे से मौलाना बोले।

"मैं तो डर गई"

"अरी, धीरे बोल !" फिर धीरे से उन्होंने कहा,

"क्या बात है ? मेरा तो दिल धड़कने लगा, जरा देखियो छाती पर हाथ धरके !" और मौलाना का हाथ पकड़कर अपनी सूखी पसलियों और सूखे स्तनों पर रखकर दिखाया। दिल धकधका रहा था। मौलाना ने हाथ हटा कर कहना आरंभ किया—"बात ये है कि ये लोग नसीरपुर से आये हैं, कल यहाँ धपला करेंगे, यहाँ के हिन्दुओं को कत्ल करेंगे, ये आदमी नसीरपुर वालों ने भेजे हैं।"

"तो क्या बात है, कह दो मेरे बस की बात नहीं, ले बोल ! आधी रात आदमी भेजे, दिन में भेजते......"

"अरी सुन तो।"

"कहो।"

बाहर से शब्बीर अब भी पुकार रहा था—कभी मौलाना और कभी मियाँ, कभी नाम लेकर। दोनों मियाँ-बीबी सुन रहे थे और अपनी बातें कर रहे थे।

"बात यह है कि उन्होंने दो गधे और भेजे हैं।"

"क्यों ?"

"उन पर छुरे और भाले हैं।"

"सची ! या खुदा, क्यों जी, छुरे क्यों भेजे ?"

"इन्हें बाँट दो अपने गाँव वालों को, और मारो हिन्दुओं को।"

"मत खोलो जी किवाड़, ना जी, हम नहीं करते ऐसा काम, भला बताओ तो सही !"

"सोई मैं सोच रहा हूँ, पर इनसे पीछा कैसे छुड़ाऊँ !"

"तो मैं चलूँ उनके पास !"

"क्या बताऊँ ?"

"अच्छा दोनों चलें, उनसे छुरे ले लो और घर में धर लो, तुम मती बाँटियो गाँव में मुसलमानों को, क्या पता लगेगा उन्हें, बस !"

"ठीक कही तुमने, अच्छा चल तो।"

दोनों उठकर फिर बैठक में आये। शब्बीर ने आवाज फिर दी।

"अरे भाई, खोल रहा हूँ, सबर करो," कहकर मौलाना ने किवाड़ खोल दिये।

"दिया जलाओ मियाँ! यहाँ तो भीग गये, सरदी में अकड़ गये।"

"अच्छा, अच्छा ! लो !" कहकर मौलाना ने दियासलाई जलाकर झट दिया जलाया। एक बार फिर बैठक में प्रकाश हो गया।

"कहाँ चले गये थे ? अरे रहमत, आ जा।" शब्बीर बोला।

"मैं पाखाने चला गया था, जरा पेट में गड़बड़......"

आते ही रहमत ने 'सलाम' किया।

"अबे उतरवा सामान ?" शब्बीर ने रहमत से कहा, "यहाँ क्या आके खड़ा हो गया, यार ?"

"तो चल ! मेरे बस के अकेले ना हैं।" रहमत बोला।

"चल।"

दोनों एक गधे के पास गये और उसके ऊपर रक्खी खुरजी को दोनों ओर से पकड़ कर उठाये मौलाना की बैठक के अन्दर ला पटका। बरतनों के बजाने का-सा एक शब्द उन छुरों के गिरने से हुआ।

"मियाँ, सवा सौ हैं," शब्बीर ने मौलाना से कहा।

"क्यों रे, इसमें छुरे हैं ?" रहमत ने शब्बीर से पूछा।

"हाँ-हाँ, साले, धीरे बोल।"

"यहाँ कौन सुने है, चल वह भी ले आवें।"

दोनों फिर गये और दूसरे गधे का बोझ उतार कर उसे भी बैठक में ला पटका। फिर वैसा ही शब्द होकर रह गया।

"इनमें पचास हों या साठ। अच्छा मियाँ, जवाब और लिख दो कि वसूल पाये, उसी खत के पीछे लिख दो, हाँ हाँ।" शब्बीरा ने कहा।

मौलाना ने अपना पीछा छुड़ाने के ख्याल से झट सामने के बस्ते के पास से क़लमदान उठाकर रोशनी में जेब से खत निकाल उसकी पुश्त पर लिखना शुरू किया :

'जनाब मौलवी अब्दुस्समद साहिब, तस्लीम, आपका भेजा सामान मार्फत—'

"क्योंरे तेरा क्या नाम है ?" कलम की नोक के इशारे से पूछते

हुए रहमत से बोले।

"रहमत," रहमत ने तुरन्त ठण्ड से काँपते हुए कहा।

"और तेरा ?" शब्बीर से मौलाना ने पूछा।

"शब्बीरा, तुमसे तो पहिले बता चुका," शब्बीर ने कहा।

'रहमत और शब्बीरा वसूल पाया। हस्ब हिदायत तकसीम कर दिया जायगा।

आपका,
नियाज़अली'

"लो," कहते-कहते नियाज़अली ने फिर अपने लिखे पर निगाह डाली और बोले, "लो।"

जवाब लेकर शब्बीर ने तह करके अपने कुर्ते के नीचे बनियान की जेब में हिफाज़त से रख लिया और बोला, "हाँ, तो अब हमारे सोने और गधों के लिये ?"

"अरे पागल तो ना हो गये ?" उनकी बीबी बोली।

"क्यों ? बड़ी जी, सलाम !"

"सलाम बेटा, जीते रहो, अल्ला बड़ी उमर करे, तुमको यहाँ ठहरना चाहिए भी नहीं, सुभे, (सुबह) होते होते गाँव से बाहर, बल्कि अभी गाँव से बाहर चले जाओ तो अच्छा। जो पता लग गया किसी को, तो मियाँ तुम और हम कहीं के भी नहीं रहेंगे। है ना ठीक ? क्यों रे !"

"है तो ठीक, पर हमारा तो बुरा हाल है, ठण्ड के मारे अकड़े जा रहे हैं।" शब्बीर ने कहा।

रहमत को ये बातें बुरी लगीं, कि जाड़े में भीगते तो आये और फिर तीन कोस भीगते जायें। पर मौका ऐसा ही हुआ तो जाना ही

पड़ेगा, सोच कर वह बोला, "तो मौलना थोड़े हाथ-पाँव तो सेंक ही लें, बीड़ी-तम्बाकू पी लें, तभी चले जायेंगे।"

"हाँ, हाँ, ठीक है, पर बेटा मेरे! तुम चले जल्दी जाओ। क्योंरे, नसीरपुर में आज क्या हुआ? तुझे तो पता होगा।"

"अजी पूछो मत! चुन-चुन कर सभी साफ कर दिये और..."

"क्योंरे उनके बच्चे औरतें सब?"

"सब, औरतों को ले गये जिसके जी में आया, बच्चों को भी, और बहुत से मुसलमान बना लिये।"

"मुसलमान हो गये?"

"और क्या होते ना तो साले मरते!"

नियाजअली की तरफ देख कर उनकी बीबी बोली—"तो मियाँ, तुम तो सब को मुसलमान बना लियो। हाँ जी, क्योंरे ठीक है ना!"

"और क्या ठीक तो है, देख रहमत! एक काम कर," अपनी बीड़ी सिलगाते हुए शब्बीर बोला। उसने एक बीड़ी रहमत को भी दी। रहमत दीपक की लौ से जब उसे सुलगा चुका, तब बोला, "क्या काम? भइया, बीड़ी पी लेने दे तब काम होगा।"

"देख ये छुरे और भाले बोरों में से खाली कर ले। मौलाना एक-दो बोरी हो तो दिलवाओ।"

अब मौलाना को और भी भय लगने लगा, एक कोफ्त-सी बढ़ी, 'अजीब दबाव है' उन्होंने सोचा। और शब्बीर इतना खुल कर बातें कर रहा था कि मानों असल काम वह ही कर रहा हो। मौलाना पर उसे पूरा अधिकार-सा हो। कि नियाजअली बोले 'भइया' बोरी मेरे घर एक भी नहीं है"

"तो चादर, दोहर, कोई और कपड़ा लाओ।"

"क्या लावें ? तुम तो यार तंग कर रहे हो !"

"तंग ? तो भइय्या रहमत, यहीं लौट दें इन छुरे और भालों सालों को, अपना कहीं संगवाओ (रक्खो) हमार जाने, हाँ जी ।"

रहमत "अच्छा" कहकर बोरी की गाँठ खोलने लगा । गाँठ खोलने पर उसने बोरी को उलटा किया, बजते हुए छुरे बोरी में से निकलने लगे और उनका वहाँ एक ढेर लग गया ।

सभी लगभग एक नमूने के थे । सीधे लोहे की मोटी पत्तियों के और करीब-करीब सभी रक्त में सने हुए थे । जो दीपक की रोशनी में जंग लगे-से लग रहे थे । रक्त सूख चुका था फिर भी उन पर चिप-चिपाहट अभी थी । कुछ तो बिलकुल कोरे थे । एक छुरा उठाकर शब्बीर रहमत की गरदन पकड़ कर उसकी ओर हँसी में तान कर खड़ा हो गया और बोला, "बोल साले !"

रहमत की बीड़ी गिर गई, उसे क्रोध आ गया, बोला, "तुझे बड़ी मस्ती छूट रही हैगी, बस यह ही सीखा है ?"

मौलाना भी क्रोध में भरे खड़े थे, शब्बीर की ऐसी हरकतें उन्हें कतई नहीं भा रही थी, बोले, "देखो जी ! यह बातें फिर करना, यह क्या बात है ? तुमको हो क्या गया ?"

"अच्छा साहब अच्छा ! ले बे ! दूसरे को भी खोल ।"

रहमत से कहते हुए उसने छुरे को छुरों के ढेर पर फेंक दिया और दूसरा बोरा खोलते-खोलते बोला, "मियाँ मैं तो दिखा रहा था ऐसे ही, कोई अपने यार रहमत के थोड़े ई (ही) भौंक देता ?"

बोरा खुला और दस्ती भाले झनझनाते निकल पड़े, मौलाना की बीबी उन्हें देख कर डर गई, बोली, "अरे मेरे अल्ला ! किन्ने (किसने) बना दिये रे इत्ते (इतने) सारे ?"

"बनाने वाले भतेरे (बहुतेरे) बड़ी जी।" और बीड़ी में एक दम लगाकर खाँसने लगा। मौलाना ने दोनों ढेरों पर कपड़ा ला कर डाल दिया और उनसे बोले, "अब तुम लोग चलते बनो। बारिश थम गई हैगी, रात अब थोड़ी और है ..."

बीच में बात काटकर शब्बीर बोला, "साहब, ऐसी क्या बात? हम लोग तो जरा भी आराम न कर पाये, ये बीड़ी तो खतम कर लें, आपको तो बड़ा डर लग रहा हैगा, मौलाना।"

"डर की तो बात है भइया! जरा देर में पता लग जाये तो तुम्हारा तो कुछ बिगड़ेगा नहीं, इसी से कह रहा हूँ कि तुम लोग अब जाओ, यहाँ तुम्हारा रुकना ठीक नहीं, समझे?"

"समझ गये साहब, ठीक है जी, रहमत जो वहाँ से चले जाने में ही खुश था, बोला। उसे ये सब बातें इतनी बुरी लग रही थीं कि उसने फिर कहा, "मौलाना, यह तो कसाई है पूरा, इसे जरा भी आगे का ख्याल नहीं। बात को दूर तक नहीं समझता, हम लोग अभी चले जायेंगे, जरा थम जाओ।"

बाहर बारिश कुछ कम अवश्य थी पर इक्का-दुक्की बूँदें पड़ जरूर जाती थीं।

"चल भाई रहमत," शब्बीर ने दोनों बोरियाँ उठा लीं, अपना वह लम्बा कोट उसने फिर ऊपर से ओढ़ लिया, भीगा-सा भारी भारी।

बाहर गधे एक दूसरे की ओर मुँह किये चुपचाप खड़े थे। उनके बाल भीग गये। उनकी करी हुई लीद से उठती हुई भाप में सड़ाँध मार रही थी। एक गधे ने पेशाब कर दिया था। उस पर पाँव पड़ने से शब्बीर को अपने तलुओं में गरमराहट-सी लगी। बोला,

दीखे साले ने मूत दिया।"

बोरी फिर गधों पर डाल, दोनों नियाजअली को सलाम करके चल पड़े। उनके चले जाने पर नियाजअली ने संतोष की साँस ली, पर पूरा संतोष उनको अब भी नहीं था। बाहर आकर उन्होंने हवा में हथेली फैला कर बारिश के जोर को भापा। बूँदे पड़नी कम हो गई थीं। दोनों गधे हाँफते हुए, जिधर से आये थे, उधर को ही चले गये; थोड़ी दूर तक वे जाते दिखाई दिये, बाद में उनके जाने की दिशा में एक भयानक अँधेरा मुँह बाये नियाजअली की तरफ जहर उगलने लगा। वेर डर-से गये। अकेलापन, अन्दर बैठक में छुरे और भाले, डर कर उन्होंने झट किवाड़ों को बन्द कर लिया और अपनी बीबी के सामने जा खड़े हुए।

४

नूरुद्दीन उस लक्कड़ पर जमे हुए, सुकड़े हुए सब माजरे को देख रहे थे। वे समझ गये कि नियाजअली नहीं चाहते हुए भी ऐसा करने पर विवश हो गये। नियाजअली कितने खतरनाक आदमी हैं, वे आज समझ सके और वह शब्बीर कितना निर्दयी और कट्टर दिल था, बेचारे रहमत पर उनको घृणा और दया आ रही थी। यह सब जो कुछ उन्होंने देखा, इस बात को समझने के लिये काफी था कि कल निश्चय ही मार-काट हुए बिना नहीं रहेगी। एक बार तो उनके जी में आया कि नियाजअली की बैठक के दरवाजे को खुलवा कर उनको समझा दूँ, पर इससे काम नहीं चल सकता। उनके पाँव बैठे-बैठे अकड़ कर तख्ता हो गये थे, और कम्बल भीग-सा गया था। सारी देखी बातों का नक्शा उनकी आँखों के आगे, उस काले अँधेरे में एक

डरावने स्वप्न की तरह फिर रहा था। ये छुरे, और भाले उन्होंने बोरियों में से खाली होते देखे थे। सवा सौ छुरे थोड़े नहीं होते। उनको चारों ओर अंधेरे में डर-सा लगने लगा, कोई उनके छुरा भोंक दे धप्प से! हवा में भाले और छुरे उड़ने वाले थे।

नियाजअली का दरवाजा बन्द हो गया। अन्दर चिराग जल रहा था। चुपके से उठकर नूरुद्दीन नियाजअली की बैठक के बाहर आकर खड़े हो गये, उनने झाँक कर देखा कि मियाँ-बीबी एक फटी बोरी में छुरों को भर रहे हैं। भर चुकने पर उन्होंने भालों को एक फटे कपड़े की चादर में बाँधना शुरू कर दिया। बाँधते-बाँधते बीबी से बोले, "क्या करूँ? बता तू?"

"अजी, इनको तो सामने के कुएँ में डाल दो, किस्सा कटे, भालों को भी पीछे उसी में। कौन इस अपराध को बाँटता फिरेगा तुम्हारे?"

"क्योंजी! अगर नहीं बँटेंगे तो भी क्या हर्ज है? कह देंगे कि बाँट दिये लोगों को।"

"हाँ यह भी ठीक है तो एक काम करो, इन्हें उठाकर ऐसी जघे (जगह) धर दो, जहाँ किसी को पता भी न लगे।"

"हाँ ये भी ठीक है। भली हत्याभरन गले पड़ी! लेना एक ना देना दो!"

"भला देखो ना! पर देखो, तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ, तुम मती किसी का अजाब अपने सिर पर लियो! देखो, तुम्हारे भी तो नन्हे-नन्हे बाल बच्चे, नाती पोते हैं, बस दूसरे करें, उन्हें करने दियो।"

एक ठंडी साँस ले कर नियाजअली अन्दर चले गये। और नूरुद्दीन अधिक समय न खोकर फिर निमाजी के घर की ओर चलो।

निमाजी के घर में अब भी उजाला हो रहा था। पहुँचते ही उन्होंने

देखा कि आठ दस हिन्दुओं के मर्द वहाँ जमा हैं, वे लोग अपने-आप आने लग गये थे।

"सलाम !" कई लोग एक साथ धीरे से बोल उठे।

"सलाम, भई जल्दी करो, जितने आदमी आ सको दिन से पहले-पहले बस आ ही जाओ।"

"क्यूँ साहब !" एक ने पूछा।

"बस मैंने कह दिया, तुम्हें क्या पता क्या हो रहा है गाँव में ! और कल क्या होगा ? बस बताने का वक्त नहीं है तुम लोग लिवा-लिवा के लाओ लोगों को।

उन में से एक बोला, "भई नूरदीन, हम तो अपनी औरतों को तुम्हारे यहाँ छोड़ आये; अपनी चीज-बर्तन-कपड़े ले आये, बाकी सब छोड़ आये, देखी जायगी, जिंदा रहे तो फिर देखा जायगा, पर......देखो ! भाई हमारे साथ दगा मत करना।"

"अरे यार ! मुझे सांझ से ये वक्त हो गया, मारा-मारा फिर रहा हूँ, भीग गया, अब भी तुम को यकीन नहीं मेरा !"

"नहीं जी ! क्यों नहीं ? तुम्हारा सहारा है जी ! जनम-जनम गुन नहीं भूलेंगे, मिस्तरी तुम्हारा। देखो !" और नूरुद्दीन के पाँव पकड़ने को हुआ, पर नूरुद्दीय ने अपने पाँव पीछे खींच लिये और बोला, "हैं हैं ! क्या यार ! ये क्या कर रहे हो !"

निमाज़ी को नूरुद्दीन ने जब नियाज अली वाली बातें बताईं, तो वह काँप उठा, उसने आदमियों को कोठों के अन्दर चले जाने को कह दिया। और दो-तीन से कहा कि वे अपाहिज और मरीजों को लिवा लावें, काम में जल्दी करें।

गुरदयाल की लठिया थामे, सर पर एक गठरी रखे अलीजान,

अपने घर उसे लिवा लाया, घर आकर गुरदयाल को उसने कोठे में जा बिठाया। और बोला, "सूरा, बोल! लिवा लाया न?"

"लल्ला, जो अब बच जायँ तो तेरो गुन न भूलूँगा।"

"बस चुपके से बैठ जा, राम नाम जप बैठ के।"

आने वालों का ताँता बँधने लगा; जो आता सर पर गठरी लादे और निमाजी के कोठे में जा घुसता। वहाँ बात करने की मनाई थी, कोई बोलता नहीं था। चुपचाप वे अपना सामान नीचे रखे, वहीं बैठे वक्त काटने लगे।

गाँव भर में हिन्दुओं में खबर पड़ चुकी थी, कि गाँव में छुरे और भाले आ चुके हैं, रात में ही निमाजी और नूरुद्दीन के घर में जा छुपने में ही खैर है। उधर नूरुद्दीन के घर में यह हाल था कि गोद में सोते बच्चों को सँभाले, नन्हें-नन्हें बच्चों को छाती से चिपटाये, अपने गहने बाँधे औरतें आतीं और उसी कोठे में घुसती चली जातीं। एक बीमार मंगल चमार को उसके घरवाले कन्धे चढ़ा कर लिये आ रहे थे, पीछे पीछे सुक्खी की अन्धी अकेली ताई का हाथ पकड़े दो औरतें चुपचाप चल रहीं थीं।

गाँव के मुसलमान नींद में मस्त थे। पर हिन्दुओं का बच्चा-बच्चा जगा हुआ था। नूरुद्दीन और निमाजी के घर वाले सभी जगे हुए प्रबन्ध करने में जुटे हुए थे। बड़ा बिकट समय था। बहुतों को एन वक्त के वक्त पता लगा और घबरा कर नूरुद्दीन के घर औरतों को छोड़, रुपया-पैसा ले, जेवर संभाल, जाड़ों के कपड़े, थोड़ा अनाज बाँध कर चल पड़े।

सियाने बच्चों को समझा दिया गया था कि बोलें नहीं, नहीं तो गाँव के मुसलमान जान से मार देंगे। डर के मारे वे चुपचाप थे। सब सहमे हुए गलियों में कीचड़ में चले जा रहे थे।

आग और पानी

यह अच्छी बात थी कि रात अँधियारी थी। घर वाले जब अपनी औरतों को नूरुद्दीन के घर छोड़ कर अलग होते, तो ऐसा लगता कि अब सदा के लिये जोड़ी बिछुड़ी। वे रो पड़ते। अपने नन्हे-नन्हे, बच्चों को पुचकार कर, प्यार करके डुबडुबाई आँखों से उन्हें देखते हुए वे निमाजी के घर की ओर चल पड़ते।

चार बजते-बजते, करीब-करीब सभी औरतें नूरुद्दीन के घर में आ गई थीं। होंगी कोई बाईस-तेईस, उनके बच्चे भी उनके साथ थे। सब दम साधे आँखों से आँसू बहाती हुई फर्श पर बैठी हुई थीं, उनकी गोदियों में साल-साल, दो-दो साल, छे-छे महीने के बच्चे बेफिक्र लेटे हुए थे।

कोठे में उनकी साँसों से हवा गरम हो गई थी। दूसरे, किवाड़ों को बन्द रखने की ताकीद थी। एक छोटा-सा दीवा सामने ताक में रखा हुआ, कोठे भर में अपना मद्धिम प्रकाश डाल रहा था।

बारिश थम चुकी थी। बादल उसी तरह आसमान को घेरे छाए हुए थे।

"तू चलती नहीं?" नूरुद्दीन ने परसनदी के यहाँ जाकर उससे कहा और एक ओर को अपना नाक सिनकने लगा।

"मैं कहाँ जाऊँ, सब छोड़कर? तुम्हीं बताओ। और क्यों जाऊँ?" एक ओर खड़ी होकर जरा-सा घूँघट निकाल विधवा परसनदी बड़े इतमीनान से बोली।

"तेरी समझ में नहीं आती बात? तुझे कल मरना मंजूर है, तो दूसरी बात है!" खीज कर नूरुद्दीन ने उसे समझाया।

"मुझे क्या सभी को मरना हैगा, कारीगर!"

"सब तो चले गये, तूही एक ऐसी है जो रह गई।"

"कहाँ? और मैं कैसी?"

बड़ी मुश्किल थी नूरुद्दीन के लिए। औरत की जात, फिर गाँव की

एक ठेठ कुम्हारी 'परसनदी' जिसने अपनी सारी आयु इस प्रकार माया जोड़ने और अपना छोटा-सा घर संभालने में खर्च की, अब भला कैसे एक मुसलमान के कहने से उस घर-बार को छोड़ दे? उसके बर्तन, भाँडे, कपड़े लत्ते, घर का सारा ढंडीरा कहाँ ले जाय लादकर? अपनी जान से ज्यादा उसे इस समय अपनी संग्रहीत वस्तुओंकी ममता सता रही थी। उसके लिये यह समस्या कुछ कठिन नहीं थी, जब मुसलमान उसे मारने आवेंगे, तब वह उनसे कैसे पीछा छुड़ायेगी? उसने सोच लिया था कि उनके पैरों पड़ कर, रो-धोकर अपना बचाव कर लेगी। क्या उसके रोने पर वे लोग तरस न खायेंगे? जब वह गिड़गिड़ा कर रोयेगी, बिनती करेगी, तो अवश्य वे लोग उसे छोड़ देंगे। यह परसनदी की धारणा थी कि उसे कुछ नहीं होगा, पर वास्तविकता की भयंकरता का तो उसे अनुमान भी नहीं था।

"तो तुम मुझे कहाँ ले जाओगे, बताओ, अच्छा?" परसनदी ने बड़ी निश्चिन्तता से नूरुद्दीन से पूछा।

इतनी आजादी और बेफिक्री से उसके पूछने के ढंग को देख कर नूरुद्दीन के तन बदनमें आग लग गई। कहाँ तो जल्दी की बात थी, और कहाँ ये मूर्खा अपने आगे की बातों को कुछ समझती ही नहीं थी; उधर रात थोड़ी रह गई थी। फिर क्रोध से नूरुद्दीन बोले, "हरामजादी! जब कल नसीरपुर के मुसलमान आकर तेरी आबरू सब के सामने उतारेंगे, तब तुझे पता लगेगा, और मेरी बातें याद आयेंगी। तेरे बच्चों के पेट में वे लोग छुरे और बल्लम भौंकेंगे, तब रंडिया, मुझे याद करिये। सुसरी! अपने आप मरने को बैठी है, और इन बालकों को मरवावेगी। ले मैं जा रहा हूँ। मरती रह यहीं पर!" कह कर नूरुद्दीन बनावटी ढंग से चल देने को उठे, कि परसनदी फिर बोली, "अजी ठहरो तो। मुझे

कहाँ ले चलोगे, आखिर ?"

"तेरे से कह दिया, भागवान ! तू मेरी धर्म की बहन से भी बढ़कर हैगी, जहाँ मैं ले चलूँ, वहाँ चली चल ! अपना सामान बाँध झट से, और चल, ज्यादा बात करने की फुर्सत नहीं हैगी मुझे।"

ऊपर से लटकती रस्सी में तोते का पिंजरा परसनदी के सर में लगा। उसमें रखी कटोरी का पानी नीचे बिखर गया, बिना उसकी परवाह किये दोनों एक टिमटिमाते दीवे के प्रकाश में सामान बाँधने लगे। थोड़ी देर में उन्होंने थोड़ा-बहुत सामान बाँध लिया। सामान बाँधते-बाँधते नूरुद्दीन बोले, "परसनदी ! तू जितनी बेवकूफ हैगी, उतनी गाँव में और कोई नहीं।"

"क्या ? मैंने क्या कर दिया ?" एक लोटे को गठरी में ठूँसती हुई उसने पूछा।

"भला तेरी समझ में नहीं आई बात कि यहाँ गाँव में छुरे, बल्लम सब आ चुके हैंगे, अब भी कुछ कसर रह गई ? और फिर भी अपनी जिद करोंई जाय थी।"

"मैं कारीगर, का जानू इन सब बातों कू ? लल्ला के चाचा (अपने मृत पति) हे जब जिन्दा, वे सब करत धरत हे। अबमो रंडिया (राँड) को का पतो कि का होनहार है ?"

"अच्छा चल !' नूरुद्दीन ने गठरी उठा कर बाहर ला धरी, एक बच्चे को उसने अपने कन्धे से लगा लिया, और दूसरे को परसनदी ने अपनी गोद में ले लिया। सात बरस के 'भवानी' को जगाकर, उसे अपने ओढ़ने का छोर पकड़ा कर, पीछे-पीछे चलने का आदेश कर, परसनदी बाहर निकल आई।

घर छोड़ते उसे ऐसा लगा, मानो उसका करा-धरा आज सब नष्ट

हो रहा है, और वह अपनी आत्मा के विरुद्ध यह सब कर रही है। अगर उसे अपनी आबरू जाने का सोच न होता, तो वह अवश्य ही वहीं रहती और मरती दम तक अपने घर-द्वारे की रखाती। फिर ये नन्हे-नन्हे बच्चे! इनकी दुर्गति होती फिरेगी। उसका तोता वहीं लटकता रह गया।

बाहर ताला लगा, एक बच्चे को काँधे से लगाये, गठरी सर पर रखे, आगे-आगे नूरुद्दीन जाड़े में काँपते, पीछे-पीछे परसनदी दूसरे बच्चे को छाती से लगाये, तीसरे को ओढ़नी का पल्ला पकड़ाये, कपड़ों की एक गठरी अपने सर पर भी रखे चल दी। अँधियारी रात में वह गाँव दोनों को परदेश—सा लगने लगा, जहाँ अपने कुन्बे (गृहस्थी) को सँभाले दोनों चल रहे थे। ठण्डी हवा का सर्राटा उनके कानों में को आर पार निकलने लगा। पास के पीपल के पत्ते उस हवा में एक बार कराह उठे। सारे गाँव पर एक अजीब भयानकता कालिमा का रूप धारण किए हुए बुरी तरह से छाई हुई थी।

आसमान पर बादल हलके पड़ गये थे, जैसे फटे दूध के गल्ले उसके पानी में स्थिर हों। उनको चीरता हुआ चाँद पूरब से पश्चिम को बेतहाशा भागा चला जा रहा था। जहाँ चन्द्रमा था, उस स्थान के बादल सीपियाले से, सिंहचर्म की तरह पीले भूरे से हो रहे थे।

गली के दोनों ओर की दीवारें पानी पड़ जाने से ठण्डी और काली-सी दिखाई दे रही थीं। एक घर के आगे रुक कर नूरुद्दीन ने पाँव के धक्के से उसके किवाड़ खोले और अन्दर घुसा चला गया। परसन्दी पीछे-पीछे चली आ रही थी। घर में घुसते ही उसका जी घबड़ा उठा, जब उसने देखा कि नूरुद्दीन अपने ही घर में उसे लिवाये जा रहा है। उसे शंका होने लगी कि कहीं वह उसके साथ कोई अनर्थ

न कर बैठे ? एक बार उसने चाहा कि उलटे पाँव भाग खड़ी होवे, पर एक बच्चा, और सामान जो नुरुद्दीन के पास था उसे मजबूरन पीछे-पीछे चलकर, अपने-आपको सोलहों आने नूरुद्दीन के ईमान पर छोड़ देना पड़ा।

जब वह कोठरी के अन्दर घुसी, तो जो उसने देखा, उस पर उसे विश्वास न हुआ। उसकी सभी परिचित स्त्रियाँ वहाँ दीपक के धुँधले प्रकाश में बैठी खुसुर-फुसुर करती दिखाई दीं। अब उसे पूर्ण विश्वास हो गया कि उसकी जिद न जाने क्या आपत्ति उस पर ढा देती। सामान नूरुद्दीन ने एक तरफ को धर दिया, बच्चे को उसने दूसरी औरत को सौंपा, और बाहर निकलते-निकलते बोले, "बस अब तुम जानो, समझाय दियो री इसे भी सब बात, बालक बच्चों को रोने मत दीजो। अब तुम्हारा अल्ला मियाँ मालिक है।"

नूरुद्दीन के कन्धों में दर्द होने लगा, सिर पर बोझा, उसका दर्द गर्दन में था। ठण्ड में सारी रात फिरने से सारे बदन में एक तरह की हड़फुटन-सी थी। न जाने उन्हें बुखार होने वाला था। वह बिलकुल थक चुका था। एक काम और करना रह गया था ; निमाजी के घर जाकर आखरी बार फिर मर्दों का पता निकालना था।

कितना बड़ा काम वह कर रहा था और कर चुका था ? वह समझ रहा था। इसमें रत्ती भर अलसेट (ढीली) या देर कितनी घातक हो सकती है, यह भी वह जानता था। दशा तो उसकी ऐसी हो गई थी, कि उसका जी चाहता था, कि अपनी रजाई ओढ़ कर और मुँह ढक कर लेट जाय। मगर जरा से काम के लिए अब क्या आराम ! और कैसा लेटना ? थका हुआ नूरुद्दीन फिर चल पड़ा, निमाजी के घर की ओर।

निमाजी के घर के आगे सुनसान था, निमाजी का लड़का अली-जान दीया जलाये बैठा अपने हुक्के को पीता हुआ रात की बातों को सोच रहा था। साथ में यह भी सोचता जाता था कि उसके बाप ने क्यों ऐसा किया? हिन्दुओं को किसी और घर में छिपवा देते। अपने घर में उन्हें छिपाना ठीक नहीं था। कि नूरुद्दीन ने आकर पूछा, "तेरे अब्बा का क्या हाल है, लल्ला?"

"ठीक है कभी-कभी दर्द मार जाता है।"

"और लोग कहाँ है सब?"

"सब अन्दर बिठा दिये गये। क्यों चाचा?"

"हाँ! क्या?"

"उनके पेशाब-पाखाने की बात कैसे होयगी? वे तो पचासों हुंगे।"

"क्या बताऊँ? अच्छा चल तो सही अन्दर।" और वह अन्दर तीनों कोठरियों की तरफ चल पड़ा। वहाँ तीनों कोठरियों में लोग बैठे-बैठे थक चुके थे, मगर अपने प्राणों की रक्षा करने के लिये वे सब कुछ कर गुजरने और बर्दाश्त करने को तैयार थे। वहाँ कोठरियों में उनकी साँसों से हवा गर्म हो रही थी, जिसमें पहुँचकर ठण्ड से ठिठुरते नूरुद्दीन को सुख-सा अनुभव हुआ। और गौरी लाला को देख कर बोला, "लाला। क्या सोच रहे हो? रहे ना ठीक यहाँ?"

"भैय्या! जब जान बच जाय, तब बात है। अभी तो वैसे ही प्रान सूखे जाँय हैंगे।" लाला फिर ठोड़ी को हथेली पर टेके, हथेली को उखड़ू बैठे घुटनों पर टेके, अपनी दूकान में एकत्रित माल-मसाले को सोचने लगे। फिर बोले, "एक बात तो बताओ नूरा।"

"का बात, लाला?"

"पेशाब, पाखाने का, का हिसाब रहेगा ? और पानी-पत्ता ?"

"सब यहीं एक कोने में गड्ढा खोद के करते रहो भैय्या, बस ! और पानी-पत्ते की बात ये हैगी कि, दस-बीस घड़ा भर के अभी धर लो, बर्तन तुम्हारे पास हैंगे ही, और नल निमाजी के आँगन में हैगा, चुपचाप सब काम होता रहेगा।"

एक तरफ से देवी धीरे से बोला, " हमारे बालक-बच्चों का नेक ध्यान रखियो।"

"भाई सबसे पहिले ! बेफिक्र रहो, और मैं तो चल रहा हूँ अब।" कहकर नूरुद्दीन चलने को हुआ। एक भीड़ उमड़कर उसकी ओर आई, सभी अपने-अपने बच्चों के लिए नूरुद्दीन से ध्यान रखने के लिए कहने लगे। बड़ी मुश्किल से उन्हें चुप रहने को कहकर नूरुद्दीन अपना गिरा शरीर संभाले घर की ओर लौट आया।

आकर उसने पहला काम जो किया वह यह था कि अपनी बीबी को उस कोठरी में भेजकर उन औरतो से सख्त ताकीद कर दी कि चुप रहें, और वहीं एक ओर पेशाब पाखाना करें। बच्चे बिलकुल चुप रहें इसका खास ख्याल रखें; उसने ज़ोर देकर कहा।

एक भारी रजाई ओढ़ कर थका और ठिठुरा हुआ नूरुद्दीन अपनी चारपाई पर तब जाकर कहीं लेटा।

५

"तैने यार ! मौलाना को तंग करके डाल दिया।" रहमत ने इत्मीनान से गधे पर बैठ कर शब्बीर से कहा, और अपनी लाठी का खौदा (एकसिरा) गधे के पिछले पुट्ठों पर जड़ता हुआ गधे से बोला, "चल साले लपक कर, तेरी .."

"और क्या यार ! भला देखो न ! हम तो पदे-पदे फिरें, और

मेरा यार बूढ़ा मौलाना, ले, सो झट बुढ़िया के धोरे ! उसके जी में तो नहीं ही, (थी) यार, पर मैं तो भुट्टू को भेड़ (सौंप) ही आया हथियार !"

"अरे पाप कटा सुसरों का, बवाल साला ! मैं तो यार परेशान हो गया। देख तो सारा भीज (भीग) गया !"

"अबे घर चलके गरम हो लियो," शब्बीर बोला ; और उसने कहकर सोचना शुरू किया कि उसके गाँव के पुन्ना चमार की लौंडिया कितनी हसीन थी। जाने उसे कौन उड़ा ले गया होगा ? और उसके पिछवाड़े वाली नायन को तो पहिले ही रहीमा ले भागा। उसकी लौंडिया को शायद अब्दुलसमद के बड़े लड़के ने घेर लिया और ले गया होगा। एक बार वह सोच कर कुछ कामातुर हो उठा। उसे पूर्ण विश्वास था कि अभी तक गाँव में लूट-मार जारी होगी ; और उसके पल्ले भी कुछ माल-मसाला पड़ जायगा। एक करारी चोट खाकर उसका गधा लपक लिया।

बूँदे थम चुकी थीं। चाँद के सामने के बादल तेजी से चलते हुए, फिर दूसरी ओर के काले बादलों में मिलते हुए, उन्हीं जैसे हो जाते। वह कोई गाना गाना चाहता था, यकायक उसने गाना शुरू कर दिया, 'जब तुम्हीं चले परदेश, लगाकर ठेस......'

गाँव अभी एक कोस दूर था। एक नाले के कच्चे पुल पर से उनके गधे उतर रहे थे, वहाँ ठण्डी हवा के झोंके आने लगे, चारों ओर दूर तक खेतों पर फैला हुआ अंधेरा डरावना लग रहा था। उसी में उसके गाने के स्वर कह रहे 'दुनिया में कौन हमारा।' चमगीदड़ें दो-चार बार उनके ऊपर को चक्कर काटकर न जाने कहाँ उड़ी चली जाती थीं। खेतों से ऊपर निकले कहीं-कहीं पेड़ बिजली चमकने पर

दिखाई दे जाते। गधों की पीठ पर हिचकोरे खाते दोनों चले जा रहे थे।

गाँव के सिरे पर आते ही, जले हुए चीथड़ों की कपड़-गंध उन्हें आई। मुसलमानों के घरों के चिराग़ जल रहे थे, और शाम की चर्चा चल रही थी। एक ओर किसी का शव रास्ते में पड़ा था, एक कुत्ता उसके व्रणों का मांस झिंझोड़ता हुआ खा रहा था। एक घर में से रोने और चिल्लाने का शब्द बिना रुके आ रहा था, पानी बरस जाने से वहाँ की आग बुझ-सी गई थी, पर जले हुए छप्परों से धुआँ उस ठण्ड में एक सीधी लकीर की तरह ऊँचा उठा कर, ऊपर आकर, धुनी हुई रुई की तरह खिल कर, एक ओर हवा के साथ बह जाता था। उसके पास से निकलते हुए एक गरमाई-सी उन्हें अनुभव होती। जाते हुए उन्हें एक ने पूछा, "अरे कौन है?"

"मैं शब्बीरा, और रहमत।" शब्बीर ने जवाब दिया।

"अरे हो आये? रुके नहीं वहाँ?"

"नहीं," आगे निकल गए शब्बीर ने पीछे पूछने वाले का जवाब दिया।

अब्दुस्समद का घर आ चुका था। एक लम्बे चौड़े चबूतरे के ऊपर बनी हुई उनकी हवेली थी। वहीं चबूतरे हर पचासों आदमी बैठे हुए अपनी एक सभा-सी कर रहे थे। गधों को देख उनमें से कईओं ने अपनी सतर्कता, दिखाते हुए, "कौन है रे गधे पर?" वहीं बैठे कई एक बोल उठे, "अरे शब्बीरा और रहमत आये हैं, और कोई नहीं है।"

शब्बीर गधे से उतर कर उनके बीच में वहाँ पहुँचने लगा, जहाँ मियाँ अब्दुस्समद बैठे अपना काम कर रहे थे। उन्होंने बीसियों

आदमियों की मुश्कें बँधवा रखी थीं , और उन्हें इस्लाम कबूल करने पर वाध्य कर रहे थे। एक ओर को औरतें, जवान और नई छोकरियाँ बैठी रो रही थीं, उनके बच्चों का पता नहीं था।

तड़ककर अब्दुस्समद ने शब्बीर से पूछा, "आ गए! बहुत जल्दी!"

"जी ये लो पर्चा" और वही ख़त बनियान की जेब से निकाल कर उनको दे दिया। रोशनी पास मँगवा कर हुक्के का दम खींचते हुए उन्होंने ख़त का जवाब पढ़ कर शब्बीर से पूछा, "और कुछ कर रहे थे क्या?"

"कुछ नहीं! मैंने सोते से उठाये थे, वे जब जग गए, हम सामान सौंप कर चल पड़े। कुछ डर से गए वे तो," शब्बीर ने धीरे से बात कही।

"हैं हैं डर गये? अच्छा। दम लगा कर अब्दुलसमद अपने मुसलमानों की तरफ मुस्करा कर बोले, "तो देखो। रास्ता एक है समझ लिया होगा कि हम बच गये सो नहीं, तुमने मुझे समझा नहीं कैसा जमींदार? कैसा अंग्रेजी राज?"

"अजी समझते क्यों नहीं?" अख़्तर जुलाहा बोला, "पर बात ये है सरकार कि हम लोगों की ग़लती थी, जो ऐसा समझते आये।"

"अरे अभी तो अंग्रेज यहीं हैं; किसने देख लिया कि वे कब जायेंगे? तुम बहकाने में आ गये उन खद्दरधारियों के? लीग ने जैसा कहा, वैसा झट मान लिया। अरे जमींदार भी कोई चीज़ होती है?"

"क्यों नहीं साहब, जमींदार तो माई-बाप होते हैं," जुम्मम तेली पेड़ से लगा खड़ा-खड़ा बोला।

उसके करिन्दे ने भी ऐसी बातों का जिक्र छेड़ा, फिर उन बँधे हुए

हिन्दुओं को बुला-बुला कर उनसे इस्लाम धर्म ग्रहण करने को कहा। बेचारों को मानना पड़ा, न मानते तो मरते। उन्होंने अपनी आँखों से अपने परिवार वालों को बुरी तरह घायल और मरते देखा था, उनकी औरतों की बेइज्जती उनके सामने हुई थी और बीसियों का अभी तक पता नहीं था दसों रंडुवे मुसलमानों को जबर्दस्ती सौंप दिया गया था। उन्होंने तभी निःसंकोच अपने घरों में ले जा कर उनकी इज्जत पर हमला बोल दिया। अब ये बचे खुचे और रह गये थे। इनके घरों को आग लगा कर सब सामान को राख कर दिया गया, और जो हाथ लगा उसे लूट कर भाग गये। इस्लाम के नाम पर कलंक लगा कर ये दुष्ट अब भी संतुष्ट नहीं हुए थे।

इन सब बातों में विशेषता यह थी कि नसीरपुर के मुसलमानों में से लगभग किसी ने भी इस घृणित हत्याकाण्ड में हाथ नहीं लगाया था; ये कुकर्म बाहर से आये हुये थोड़े से मुसलमानों ने ही कर दिया और चले गये, नसीरपुर के मुसलमान देखते रह गये। और अपने पड़ोसियों की सहायता कुछ भी न कर सके। उनका कहना था कि अगर हमें जरा भी पहले खबर होती तो हम जितने भी हिन्दू बचाये जा सकते, बचा लेते। पर वक्त के वक्त अन्याइयों ने मारधाड़ शुरू कर दी और हम कुछ न कर सके।

दो चार नहीं, दस पाँच ऐसे भी थे जिन्होंने ऐसे कुसमय को सुअवसर जान कर अपनी प्यास बुझाने में जरा भी संकोच और देर न की। उन्हीं में से शब्बीर भी एक था।

सारी रात यही होता रहा। बाहर से आये हुए गुण्डे कार्य-कर्ता अपना काम कर के, झोलियाँ भर के, दस-पाँच लड़कियों, और औरतों को ले गये। सारा दोष नसीरपुर के मुसलमानों पर पड़ रहा था।

आखिर प्रातः ही तय पाया गया कि जो हिन्दू मुसलमान हो गये हैं, उनको छोड़ दिया जावे। उनकी औरतों को उन्हें दे दिया जावे। कारण यह कि पूर्ण अधिकार अब्दुस्समद के हाथ में था, उनको लोगों ने समझा दिया कि ऐसे ही काम चल सकता है, वैसे और तरह नहीं।

बेचारे हिन्दू जब चुटिया कटवा कर गो रक्त चख कर, अपने-अपने झोपड़ों को लौटे तो उन्होंने देखा कि उनका गाँव एक बुझी हुई चिता की तरह और भी भयानक हो रहा है। जगह-जगह लाशें पड़ी हैं, उनके बच्चों के कुचले शरीर से रात भर कुत्ते खेले हैं; सिसकते हुए, अंतिम साँसें पूरी करते हुए, अपने पड़ोसियों की ओर पथराई आँखों से देखते हुए, जो दम तोड़ रहे थे, उनकी ओर देखा नहीं जाता था। उन लाशों को भी देखकर ये छूटे हुए हिन्दू काँप गये। जिन्हें सारी रात कुत्तों ने झंझोड़ा और उसपर आपस में लड़-लड़ कर भौंकते रहे, अब प्रातः ही से गिद्ध और कौवे ताक लगाये पेड़ों पर बैठे थे।

गाँव वालों ने आँखों में आँसू भर कर अपने नए बने बिरादरों को तसल्ली दी और उन लाशों को हटवाने में सभी जुटे। कई एक ने अपने घरों में छुपे हुए आदमी और औरतों को अभी तक नहीं बताया था; ऐसे भी आदमी थे। सब जगह मनुष्य एक से नहीं होते।

गाँव से बाहर धूप दूर एक ऊँचे टीले पर पड़ रही थी, वहीं पर एक लम्बा गड्ढा खुद रहा था। लाशों को लोग उठा उठा कर ले जा कर वहाँ इकट्ठा करते जा रहे थे। उन्होंने लाशों से जल्दी छुटकारा पाने का सुगम उपाय यही सोचा था कि एक बड़ा गड्ढा खोद कर उसमें सबों को दफ्न कर दिया जावे।

उन्हीं लाशों से उनके सम्बन्धी लिपट-लिपट कर विलाप कर रहे

थे, रहमदिल मुसलमानों के आँसू न थमते, सारा गाँव एक बार दहाड़ कर हाहाकर कर उठा । उन मरने वालों के खून से इस्लाम का सर कितना नीचा हुआ, इतिहास का पन्ना सदा काले अक्षरों में बताता रहेगा ।

६

बोरियों में छुरे और कपड़ों में दस्ती भाले बाँध, नियाजअली और उनकी बीबी दोनों उठा कर अन्दर ले गये । सामने एक कोठरी में पुराल भरी पड़ी थी, उन्होंने थोड़ी पुराल हटा कर दोनों को वहीं दबा दिया, और ऊपर से काफ़ी पुराल उस पर डाल दी । फिर आ कर अपनी चारपाइयों पर दोनों मियाँ-बीबी बैठ गये । उनकी बुढ़िया बीबी बोली, "क्यों जी क्या बात हुई ? क्यूँ हिन्दुओं को, मुसलमान मारने पर उतारू हो गये ?"

"तुझे क्या पता और तुझे क्या बताऊँ ?"

"क्यों ? तुमने तो मुझे निरी बेवकूफ समझ लिया जैसे ! आखिर इत्ते कुकर्म करते फिरे हो, "मैंने अगर पूँछ लिया तो क्या बुरा किया !" कुछ रुक कर बीबी बोली ।

मौलाना को बात का यह प्रसंग अच्छा नहीं लगा । उनके ऊपर जो भार छुरों और भालों का पड़ गया था, वही उनके दिमाग को काफी परेशान कर रहा था । उनकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था । ऊपर से बीबी ने ऐसा सवाल उठाया कि जिसका जवाब देना चाहते हुए भी, वे देने में एक बड़ी भारी मेहनत और थकान-सी महसूस करने लगे । फिर बीबी का ताना जो सुना, तो मन में ही भिन्ना कर रह गये । बोले, "बस सुनना चाहती है तो सुन । एक बात, तो ये कि जिन्ना जो मुसलिम लीग के हैं, अपना पाकिस्तान बनाना चाहते हैं; हिन्दू बनने

नहीं देते; और काँग्रेस भी तो हिन्दू जमात है शायद; दूसरे, अंग्रेज चाहते नहीं कि हिन्दू और मुसलमान दोनों चैन से बैठें एक दिन भी बस जड़ यही है। समझ गई? या और समझाऊँ?" खीज कर मौलाना ने पूछा।

"बाबा! मैं तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ, मेरे पर तो नाहक अपना गुस्सा उतारो मती (मत), एक बात पूछी थी सो......"

"खैर, छोड़ इन सब बातों को, अब ये बता कि क्या करूँ? मुझे तो इसका खपत (वहम) सा हो गया।"

"अरे मजे में सोओ! हथियार देना न देना तो तुम्हारे अखत्यार में है, पड़े रहने दो उन्हें जहाँ के तहाँ, तुम्हें क्या जरूरत जो बाँटते फिरो घर घर? किस्सा कटा। हाँ, तो नहीं।" बीबी ने फैसला दे दिया।

"एक बात और बता?"

"क्या?"

"कल कैसे होगी? जब शाम को बाहर के मुसलमान हिन्दुओं को मारने आएँगे? कैसे होगी? मेरा तो जी घबराने लगा।"

"तुम्हें, देखो, मैं बताये देती हूँ, किसी के हाथ मत लगाइयो, हो सके तो दस-पाँच की जान बचा लियो। या फिर जो मुसलमान बने, बना लियो बस!!"

दोनों बातें कर रहे थे अवश्य, पर कोई विशेष नतीजा निकलने में नहीं आता था। अभी रात बहुत थी। कल शाम तक का समय था। मौलाना अपनी रजाई में गरमा कर औंघने की कोशिश करने लगे, मगर औंघ नहीं आती थी। वे ऐसे किसी की तलाश में थे; जो उनकी इस मुसीबतको बँटाने को खड़ा हो जाय। कोई ऐसा ईमानदार कौम का खादिम उन्हें नहीं सूझ रहा था।

मियाँ के थोड़ी देर के चुप रहने से बीबी ने समझा कि उन्हें नींद आ गई। वह भी अपनी रजाई में मुँह ढक कर सोने का प्रयत्न करने लगी। आज की विचित्र घटना, उसके मस्तिष्क में घूम-घूम कर रह जाती, और नींद को आने का मौका नहीं मिल रहा था।

दुपहर की उसे एक बात याद आने लगी कि जब बैठक में बैठे लोगों को नूरुद्दीन अखबार पढ़कर ज़ोर ज़ोर से सुना रहा था कि गाँधी जी बंगाल में किसी मुसलमान के घर मेहमान होकर रहने लगे हैं और उन्हें कोई कुछ नहीं कहता। आखिर वे भी तो हिन्दू हैं, और वे वहाँ रहते हैं, जहाँ मार-धाड़ सबसे ज्यादा हो रही है। उसने पढ़ कर यह भी सुनाया था कि गाँधी जी ने कहा कि किसी को ज़बरदस्ती मुसलमान बनाने से वह मुसलमान नहीं हो जाता, गाय का गोश्त खिला देने से उसका मज़हब थोड़े ही बदल गया। ये सब बे-अक़्ली की बातें हैं। उसने सोचा और गुनाया भी मन में, कि मुसलमान तो दिल से बनने में होता है, यही ठीक है।

बुढ़िया को फिर ऐसा लगा कि जो हिन्दू जहाँ-जहाँ मुसलमान बनाये गये हैं, वे सब फ़िज़ूल ही बनाये। उसे यह बात एक टोटे की तरह लगी। और मारने से तो कुछ नहीं बनता, वह तो अपने से भी गया और दूसरेसे भी। गाँव के सभी हिन्दू मौलाना की कितनी क़दर करते हैं। और उनकी औरतें मुसलमानों से ज्यादा काम-धाम करने आ जाती हैं। उन्हें मार देने पर कौन आयेगा काम-धाम करने ? सोचते-सोचते उसे फिर छुरों और भालों का ध्यान आ गया। फिर उसे एक बात और ठीक जंची कि लोग-बाग कहा कहते है, कि वे लड़ाई अंग्रेज लोग करवाते हैं। उनका राज बना रहे और हिन्दू-मुसलमान लड़ते रहें। कितनी बुरी तरह अंग्रेज हिन्दोस्तान को चिपट गये।

वह यह सोच रही थी कि मौलाना ने एक बार खाँसा। बीबी ने झट पूछा, "अभी जाग रहे हो क्या? मैं तो समझी कि सो गये होंगे।"

"अरी नींद नहीं आती, एक अजीब सोच-सा हो गया।"

"सोच काहे का? ये तो अपने हाथ की बात हैंगी। एक तो बात ये कि हथियारों का जिकर मत करियो, दूसरे हिन्दुओं से सुबह कह दियो कि जहाँ चाहें चले जाँय जान लेकर, हम जिम्मेदार नहीं।"

"क्या बताऊँ, कैसे कहूँगा? और वे जो शाम आयेंगे, वे क्या कहेंगे? उन्हें अगर पता लग गया कि मौलाना ने काम पहले ही बिगाड़ दिया, तो हमारी खैर नहीं, बिरादरी में बदनाम होता फिरूँगा। मेरी समझ में तो एक बात आ रही है, कि यहाँ के दस-पाँच मुसलमान बुलवा कर मामले को ठण्डा किये देता हूँ, मगर ऐसे भी काम नहीं चलेगा।"

"क्यों?"

"जब वे पूछेंगे किस-किस को हथियार दिये तो मैं क्या कहूँगा?"

"कह दियो मुझे याद नहीं नाम, मैंने सब बाँट दिये।"

"मैंने जवाब भी लिख कर भेज दिया कि वसूल पाये, और बाँट दिये जायेंगे।"

"हत तुम्हारा भला हो! भला तुम जवाब लिखने क्यों बैठे उन्हें? मति लिखते तो क्या हर्ज था?"

"अब क्या करूँ, खैर देखी जायगी कल।"

"तुम भी निरे अंग्रेजों के गुलाम निकले, धर लिये हथियार घर में! अपने भाइयों का गला काटने को।"

"बस चुप रह, मेरा जी मत जला।"

"तो सोओ पड़के, सब देखी जायगी।"

अपने मन को समझाते हुए मौलाना ने सब्र कर लिया। पड़ौस में कहीं किसी का बच्चा रो रहा था, उसकी माँ उसे चुप करने के लिये डाँट रही थी। डाँटने के अस्पष्ट-से शब्द आ रहे थे।

जब चाँद ज़रा देर के लिए बादलों के बीच किसी खुली झाँकी से झाँक लेता, तो एक बार को थोड़ी देर के लिए आँगन में चाँदनी खिलकर फिर अँधेरा हो जाता। गाँव में कुत्तों का भौंकना बन्द नहीं होता था। न जाने क्या बात थी? उन्हें ऐसा लग रहा था, मानो पिछवाड़े वाली गली में लोग-बाग चल रहे हों। उनका साहस न हुआ कि उठ कर देख लें कि क्या क़िस्सा है।

मियाँ-बीबी फिर चुप हो गये। अब की बार नींद के डोरे आँखों में चलने लगे, दो-एक जंभाई लेकर मौलाना ख़ुर्राटे भरने लगे। उनकी बीबी फिर सोने का प्रयत्न करने लगी। एक बिल्ली दूसरे की छत पर रो रही थी। अब वह सामने की दीवार पर नीचे उतरने का प्रयत्न करने में थोड़ी देर के लिये खड़ी हो गई। एक बार नीचे की छोटी दीवार पर कूद कर वह आँगन में सहज में उतर आई। और न जाने किस ओर जाकर, दो एक बार रोकर फिर न रोई। उसके रोने पर बुढ़िया ने मन ही मन उसे कोसना शुरू किया, 'जाने उत्ती डायन किसे खाना चहे है।' उसका विश्वास था कि बिल्ली के रोने के अपशकुन का परिणाम किसी की मृत्यु होना ही होता है। बिल्ली फिर न रोई और न जाने कहाँ चली गयी।

७

पौ फटती जा रही थी। बादल साफ़ से होते जा रहे थे। पूरब की ओर क्षितिज में बादलों और आकाश का धुँधला-सा लालिमा लिये

आग और पानी

हरा सबेरा क्रमशः बढ़ता आने लगा।

गाँव एक बीमार की तरह अँगड़ाई लेकर पुनः अपनी शैय्या में समा गया। क्या हुआ और क्या होगा? कौन जानता था। कि भारत के गृह-कलह के इतिहास का एक काला पन्ना उलट कर उषा दूसरे को पढ़ना आरम्भ करने वाली थी। इसी धरती पर जन्म लेकर उसे अपनी मातृ-भूमि कहने का दम भरने वाले भारत के दोनों सपूत हिन्दू और मुसलमान आज किस प्रकार आपस में निपटेंगे? कोई नहीं जान सकता था।

पाश्चात्य कुटिल राजनीतिज्ञ द्वितीय संसार व्यापी महासमर से अपने गोरे हाथों को पूर्णरूपेण न रंग सके और उधर भारत की जनता उनके समक्ष अपनी जन्म-जन्मान्तर की लूटी हुई स्वतंत्रता की धरोहर को अहिंसा और सत्य के आग्रह पर माँगने खड़ी हो गई, और उधर भारत के दोनों सपूतों के हृदयों में एक दूसरे के प्रति श्रद्धा और प्रेम के अँकुर जम आये, तब वे ही राजनीतिज्ञ भारत को गृहयुद्ध में झोंक कर भारत के खून से फिर अपने शेष हाथों को रंगने बैठ गये। जनता जानती थी कि इस गृहयुद्ध के लड़ाने वाले विदेशी ही हैं, और अपने हाथ अपने भाइयों पर उठाने में उन्हें संकोच होता था, परन्तु फिर भी कुपढ़ जनता में क़ौम के खोखले और दिखावटी खिदमतगारों द्वारा अपनी आग फैलाने में फिरंगी सफल हुआ।

एक-एक दिन बीत रहा था असंख्यों की आहुतियाँ लेकर, हजारों स्त्रियों पर बलात्कार करवाकर, लातादाद बच्चों की पसलियाँ तोड़कर और उनकी टाँगों को बीच से चीरकर। मुसलमान हिन्दुओं को और हिन्दू मुसलमानों को कच्चा खा जाने और भारत से उनके नामो निशान तक मिटा देने पर तुल जाते थे, और ऐसे जाड़ों में उनके रहने की

दादाबाबा के जमाने की बनी भोंपड़ियों और घरों को आग लगाकर उन्हें बेघर कर दिया जाता था। हर रोज़ अगणित नारियाँ या तो अपना धर्म-परिवर्तन करके विपरीत धर्म वाले बदमाशों और गुण्डों की घृणित तृष्णा को बुझाती/और तन ढाँकने और शरीर-रक्षण का साहारा पातीं; या फिर वे मुसलमान औरतें अपने इसलाम के पतिव्रत धर्म पर अटल रह कर टस् से मस् न हो कर शहीद हो जातीं, और हिन्दू स्त्रियाँ धर्म के नाम पर मर जाना श्रेष्ठ समझ कर अपनी आत्म-हत्यायें कर लेतीं।

मर्दों का यह हाल था कि घर-बार छोड़ कर बाल-बच्चों को त्याग भाग खड़े होते, या फिर सामना करने को डट जाते। डटने वाले जौहर खेलते-खेलते संसार से चल बसते, और भागने वाले कायर फिर जाते, धर्म परिवर्तन करते-फिरते या फिर जाने किस गति को प्राप्त होते!

कुछ एसे भी सच्चे हिन्दोस्तानी होते थे, जो ऐसी मार-काट में भी अपने भाई और बहनों की रक्षा करते-फिरते, अपने घरों में उन्हें रखते, उनके प्राणों को बचाने के लिए अड़ी पर उतर आते, फिर चाहे उनके ही प्राण क्यों न चले जायँ। इस प्रकार मरनेवालों की अर्थियाँ फूल-मालाओं से सजी हुई निकलतीं, एक भीड़ उनके पीछे-पीछे उनका जय-जयकार करती, उनसे सबक लेती चलती। उनका नाम लेते समय आदमियोंकी कनपटियों के रोंगटे खड़े हो-हो जाते, उनकी बातें बीते हुए,योद्धाओं की अमर गाथाओं की तरह हर किसी की जिव्हा से सुनी जाती।

ऐसा ही दिन आज फिर निकल रहा था। रातभर जो बादल आसमान पर छाए हुए रोते और चिंघाड़ते रहे, अब उनकी लकीरें मात्र शेष रह गईं थीं। जैसे उनके दिलों का गुबार ही रात निकल गया

हो। उनके लाल, पीले, सिन्दुरिया और सुनहले रंगों में आकर्षण होते हुए भी आकर्षण नहीं था।

उस सीले हुए गाँव पर उजाला छा गया। सामने तालाब में पतली पतली लहरें निरंतर एक दूसरे का पीछा करती हुई भाग रही थीं। उनकी हिलोरों से हरी-हरी काई एक ओर एकत्रित हो गई थी। जहाँ काई नहीं थी, वहाँ लाल लाल बादलों की परछाईं की कतरनें-सी लहरों में उतराती हुई हिल रहीं रथीं।

तालाब के पास छोटे-छोटे छप्पर, मिट्टी के घर, दो-एक चौपालें भी थीं। गाँव के बीच में निकले हुए नीम और आम के पेड़ों की छालें भीगने से काली-काली हो रही थीं। मसजिद का एक सफेद मीनार सब घरों से ऊपर निकलकर अन्त में नोकीला होकर इस्लाम का पवित्र संदेश उस पाक परवरदिगार को दे रहा था। दूसरा मीनार अभी बन ही रहा था, उसके गुम्बद पर अभी क़लई की पोताई नहीं हो पाई थी। सुर्खी और ईंटों का लाल गुम्बद, कुछ अजीब-सा लगता था। मसजिद के चन्दे के नाम के रुपये नहीं रहे थे, इसी से वह अधूरा रह गया था।

घरों से अलाव जलने के गुड़भुड़इयाँ मारते अलसाये हुए धुएँ मकानों से ऊपर जा कर, पास के खेतों पर एक कुहरे के बादल की एक सीधी लकीर की तरह फैलते जा रहे थे। आदमी घरों के बाहर निकलने का अभी साहस नहीं कर रहे थे। गाँव के ऊपर एक तपेदिक़ जैसी मनहूसियत और निरुत्साह-सा छाया हुआ था। किसी का मुर्गा दो एक बार बोल कर चुप हो गया था, फ़जर की अज़ान लगाकर इमाम फिर उसी मनहूसियत में खो गया।

दिन और चढ़ आया। लोगों ने देखा कि हिन्दुओं के दो एक घरों के ताले लगे हुए हैं, उनके पड़ोसी शाम तो थे, पर रात-रात में

न जाने कहाँ चले गये। किसी हिन्दू का घर उन्हें ऐसा न मिला जो उजाड़ और बन्द न हो। ये खबर सारे गाँव में ज़रा देर में फैल गई। बूढ़े, जवान, स्त्री, पुरुष सभी देखने निकल आये। एक वैसे ही बन्द घर को शमशुद्दीन लोहार ने खोल कर पाँच-छः आदमियों के सामने अन्दर घुस कर देखा; वहाँ—

एक बकरी कोने में बंधी मिमिया उठी। घर की चारपाई पर दो-एक चीथड़े, नीचे बिखरा हुआ अनाज, खूँटी पर छाज-छलनी सब ज्यों के त्यों टँगे हुए थे। छप्पर की बल्ली से लटकते हुए छींकों में दो-चार हंडियाँ खामोशी से लटकी हुई थीं। वे अपने घर के मालिक के घर छोड़ कर भाग जाने पर भी वहाँ से नहीं हिली थीं। एक मातम, उजाड़पन, और मरे हुए-का-सा ग़म इन चीज़ों पर छा गया था। वे घर चीख उठने के लिये अपने में हाथ खींचे बैठे हों जैसे। पानी के घड़े ठण्डे पानी से लबालब भरे रखे थे। जलाने की लकड़ियों का एक छोटा सा ढेर रात की बारिश से भीग कर सील गया था। एक चिड़िया छप्पर पर आकर बैठी, और फिर तुरन्त उड़ गई, उसे भी शायद यह सूनापन बुरा लगा।

गौरी लाला का लिपा-पुता घर और उसके आगे की दुकान बन्द पड़ी थी, उसकी गाय अपने लबारे के लिये रस्सा तुड़ायें डाल रही थी। दुकान के आगे रखे तिरछे-मिरछे मूढ़े, पुरानी तिपाई, दो-तीन तख्ते, उल्टे-सीधे पड़े लाला की याद दिलाने लगे।

विधवा परसनदी कुम्हारिन भी सभी के साथ चली गई थी। उसके घर के दरवाजे पर ताला पड़ा हुआ था। अन्दर आंगन में रखे हुए बाँस, दीवार के सहारे जो थे, उनके ऊपर के सिरे बाहर वालों को चमक रहे थे। कभी-कभी एक तोता उसके बन्द घर में घबरा कर पुकार

उठता था।

खबर गाँव के लोगों में फैल गई, सैकड़ों आदमी उन घरों को देख-देख कर अपने-अपने घरों को लौट कर, उनकी ही चर्चा कर रहे थे। अब घरों की औरतें भी चार-चार, पाँच-पाँच की टोलियों में, उन घरों को देखने निकल पड़ी थीं। उनमें प्रायः सभी अधेड़ उम्र की थीं। कुछ औरतें देखकर लौटी आ रही थीं। गरीब हिन्दुओं के छोड़े हुए घर आज अपने पड़ौसी मुसलमान भाइयों के लिये एक 'देखने की चीज़' हो रहे थे; वही घर जो पहले सभी की आँखों में कुछ नहीं की तरह बसे हुए थे, आज एक अजीब विवशता से अजीब-से लग रहे थे। बाहर के खेतों तक, दूर तक जहाँ तक निगाह जाती थी, कहीं हिन्दुओं का नाम भी नहीं था।

लौटती हुई एक बुढ़िया ने शमशुद्दीन के घर के आगे इकट्ठे हुए लोगों के पास खड़ी होकर, हथेली पर हथेली मार कर, फिर एक हाथ से अपनी ठोड़ी पकड़ते हुए कहा, "ऐसा हो है डर शम्भू! हिन्दुओं की एक चिरैय्या नहीं दिखाई देती गाम में, भला देख! मुझे तो ऐसा लगे है भैइया कि उनकी सलाह रातों रात हो गई, और वे सब रात में ई (ही) भाज (भाग) निकले।"

"ताई, हम उन्हें कुछ कहते थोड़े ई! हमसे पूछा नी, गच्छा नी, का बतावें? और देख! परसनदी के तो तीन बालक थे, उन्ने कैसे करी होयगी?"

"अरे, मेरे मौला! भला देख कैसे करी होयगी उस गरीबनी ने? जाने कहाँ की कहाँ पहुँची होगी राँड़?"

"ताई देखा नहीं जाता घरों की ओर को!" एक दूसरे ने ताई से कहा।

"भला देखा जाय हैगा। प्यार तो आदमी कुत्ते से भी करने लगे है है, येतो भला आदमी थे, अबकी देख भइया क्या करे है खुदा।" कहती हुई उसने एक जवान लड़की की ओर घूर कर कहा, "चल री! क्या देखे है यहाँ खड़ी-खड़ी? अपना काम कर चलके।"

लड़की चल पड़ी, वह भी चल पड़ी। उसके संग की और औरतें भी चल पड़ीं; घरों की नुमाइश खत्म हुई।

नूरुद्दीन को उसकी माँने जगाया, "अरे उठ रे नूरा।"

उसकी नींद पूरी नहीं हुई थी, रात भर का थका हुआ शरीर अभी सँभल नहीं पाया था। उठते ही उसे रात की बातों का ध्यान आया और वह सचेत होकर बैठ गया। अब भी उसके सारे बदन में हड़-फूटन और बेचैनी-सी थी। उसने माँ को अपने पास बुलाकर पूछा, "अरी है तो सब ठीक ठाक?"

"एक बात है, उनके बच्चे रोवें बहुत हैं, बस और सब ठीक है।"

"क्या जतन करूँ? वे तो रोवेंगे ही।"

"तुझे अफीम ना मिलने की कहीं से थोड़ी सी?" कुछ देर सोच कर उसकी माँ ने पूछा, फिर बोली, "और देख तो! सारे गाँव में हो रही हैगी कि हिन्दू गाँव छोड़ कर भाग गये, सारा गाम उनके घरों को देखने जाय रहा हैगा।"

"सच्ची?"

"हाँ।"

"देख! पता न लगे किसी को चाहे जो हो!"

"तेरी बहू तो नाक सिकोड़े, मुँह फुलाये बैठी हैगी, कि इत्ती लुगाइयों को न जाने क्यूँ अपने घर में बाड़ लिया? कोई और घर न था इनके लिये...।"

नूरुद्दीन आगे न सुन सका, तलमला कर उठा, और अपनी बहू के पास जा खड़ा हुआ। वह एक झाड़ू लिए आँगन बुहार रही थी। नूरुद्दीन ने क्रोध में उससे पूछा, "क्यूँ री क्या कह रही थी?"

वह चुप रही। कि फिर वह बोला, "अरी सुना? क्या कह रही थी?"

झाड़ू लगाती हुई रुक कर, खड़ी होकर, उसने चारों ओर देख कर नूरुद्दीन से माथे पर सलवटें डाल कर कहा, "तुम्हें भला क्या सूझी ये अपराध ले लिया। देखो तो सारा कोठा सौकनों (सौतनों) ने सड़ा कर फेंक दिया, वहीं गू वहीं मूत!"

"देख! बात को समझ! ये दिन सदा नहीं रहते, न ये झगड़े रोज रहेंगे। हमारा जो फर्ज है उसे करना चाहिये, आज अगर हम इनके काम आयेंगे तो कल ये भी हमारे काम आयेंगे......"

"आ लिये काम!"

"अच्छा देख! जो मैं कर रहा हूँ, उसमें अगर तूने जरा भी टांग अड़ाई या इसकी खबर किसी को दी तो तेरी खैर नहीं! तू इस बात को समझने की कोशिश नहीं करती कि ये भी तो हमारे भाई-बन्द हैं, जिस तरह इन पर वक्त आ पड़ा है, वैसा अगर हम पर आ पड़ता, तो हमें इनकी ही मेहरबानी पर रहना पड़ता। बस अगर इनको मरवाकर तू अपना कलेजा ठंडा करना चाहती है तो याद रख, इनके पहले तू मुझे मरते देखेगी, इस वक्त हम सबों का फर्ज है कि जो कुछ कर सकें, वह कर गुजरें बस।"

बीबी बात को समझ गई और फिर उसी तरह झाड़ू लगाने लगी कि नूरुद्दीन की माँ ने नूरुद्दीन से कहा, "तू जा बेटा अफीम को, मैं बहू को समझा दूँगी, ये आजकल के जवानों में है खिलाफत की बात,

हमारे जमाने में ना तो कभी ऐसा हुआ, और न हो हमसे। देख तो फिर, कहाँ से लावेगा अफीम ?"

सुन कर नूरुद्दीन ने कहा, "लाऊँगा कहीं से जहाँ भी मिलेगी।"

"अफीम तुझे नसीरा के हाँ मिलेगी, देख।"

"कौन नसीरा ?"

"जुम्मा के बाप के पास। यह कह दिये, मेरे लौंडे को दस्त हो रहे हैंगे, उसकी दवा बनेगी। और क्या, मोल ले आइये, जित्ती मिले ?"

"अच्छा।"

कपड़े पहन नूरुद्दीन नसीरा के घर की ओर चला। जहाँ देखो वहीं चर्चा हो रही थी, कि एक ने नूरुद्दीन से कहा, "मियाँ देख लिया ?"

"क्या ?"

"भाग गये सब हिन्दू।"

"और क्या करते वे ? यहाँ रह कर मरते क्या ? यही तरीका उन्होंने ठीक समझा।"

"हाँ जी और क्या।"

नूरुद्दीन आगे चल पड़ा। उसका दिल धक्-धका-सा रहा था। जब वह किसी हिन्दू के बंद और उजड़े हुए-से घर की ओर देखता, तो उसके दिल में एक हौलीदल-सी उठ खड़ी होती, एक भय-सा उसे लगने लगता, फिर एक चोर की तरह उसे अपने चेहरे की आकृति छिपा कर बनावटी-सा आश्चर्य और एक बनावटीपना-सा अपनी बातों में लाना पड़ता। चलते हुए उसकी निगाह जिस वस्तु पर पड़ती, वही उसकी ओर सशंक देखती हुई दिखाई देती। उसके गांव की दीवारोंको क्या पता था कि नूरुद्दीनने गांव के सभी हिन्दू यहीं गांवमें खपा दिये।

दीवारें, उड़ती चिड़ियाँ, जानवर तक उसे ऐसे लगते थे, मानोवे सब जान गये हों। वह चला जा रहा था, सब पर विचार करता हुआ। वही रातवाली जगह फिर आ गई। मियाँ नियाजअली के घर की ओर जाने वाली गली। सामने उनकी बैठक के किवाड़ खुल रहे थे, कई आदमी वहाँ खड़े होकर हिन्दुओं के भाग जाने की चर्चा कर रहे थे, नूरुद्दीन इतनी भीड़ को देखकर सिहर उठा, समझा कि वे रात वाले खंजर और भाले बँट रहे हैं। कोई उसे पुकार कर, उसके हाथ में एक छुरा न थमा दे और उसे आदेश देने लगे कि देख! अपने निरापराध पड़ौसी हिन्दू की छाती या पेट में इसे एक बार सहज में ही निकाल दीजो। दगाबाज़! कपटी! अपने-आपको इन्सान कहनेवाले! हैवान से भी गये गुजरे! नूरुद्दीन को बिना बात के ही उस भीड़पर क्रोध आकर रह गया। उसको क्या पता था कि उसका अनुमान गलत था, और वे छुरे-भाले तो उस पुराल के नीचे अभी तक ज्यों के त्यों दबे पड़े हैं।

कोई उसे देख कर बुला न ले, वह लपक कर गली के सामने को कतरा कर निकल गया, और सीधा जुम्मा के बाप नसीरा के घर के आगे जा पहुँचा।

सामने गौरी लाला की बंद दुकान और बंद हवेली, मुसलमानों के पड़ौस में बन कर पछता रही थी, उसकी ईंट-ईंट बनाने वाले को बददुआ दे रही थी। क्यों न ऐसों के पड़ौस में लाकर उन्हें चुना गया, जहाँ के पड़ौस के साये तले निष्कंटक रहने का-लाला और ये घर, दम भरते। आज ये घर बस्तीवालों को धिक्कार रहे थे। इनके बनाने में पैसा और समय व्यर्थ में व्यय किया गया, इनमें रहकर रहने वालों ने व्यर्थ ही अपनी आयु काटी, और सबसे बुरा उन्होंने यह किया कि गाँव के अपने पड़ौसियों से गाँव गली के झूठे रिश्ते निकाल कर उनको व्यर्थ

ही कल शाम तक निबाहा।

जुम्मा बीस-पच्चीस वर्ष का नवयुवक था, किसान का बेटा, उसके चेहरे पर जवानी के चिन्ह होने चाहिये थे, उसकी छाती शेर की तरह आगे निकली होती, और हर साँस में आगे-पीछे होती, उसकी चाल में मस्तानापन, दिल में उमंगें होनी चाहियें थीं। पर न जाने क्यों, कोई मर्ज़ न होते हुए भी उसका चेहरा एक बीमार और उदास बंदर की तरह था। उस जैसे निरक्षर और कुपढ़ युवक गाँव में लगभग सभी थे। चलने में कमर पीछे को निकली, दुबले पतले हाथों की नसें उभरी हुई, इतनी उम्र तक आते-आते घर गृहस्थी के भार ने पीस कर, दाल रोटी की फिक्र ने उसे इस दशा तक पहुँचा दिया था। जब वह हँसता, तो एक बनावटी हँसी, दूसरों को दिखाने के लिए। नहीं तो प्रायः सभी किसानों और श्रमजीवियों की तरह दरद का मारा-सा, एक मरा-सा दिल लिये जी रहा था। इन भोले लोगों को बहकाना सहज था। यदि कठिन था बहकाना तो शिक्षित समाज के सभ्य लोगों को, जिनके आगे देश की नंगी जनता के कपड़े, भूखे भारतवासियों के अन्न की समस्यायें ही सबसे अधिक सोचने की बात है। ऐसे समाज में इन फूट डालने वालों, तथा कलह करवानेवालों की दाल न गलती। फिर क्यों न ऐसे पड़ौसियों से डर कर इन्हीं जैसे हिन्दू अपनी परम्परा का ममत्व त्याग कर, इन पर अविश्वास कर, रातों-रात कहीं जा छुपते?

नेतागण, अखण्ड भारत, पाकिस्तान के नाम की माला, आँख बंद किये फेरने में रत थे, उन्होंने यह समझने की चेष्टा शायद कभी न की कि उनकी माला के नब्बे प्रतिशत से अधिक दाने इन्हीं खेतिहर और श्रमजीवियोंके नाम पर उलटी फिर रही है। दूसरी ओर इन भोले लोगों को तनक-सा भुलावा देकर कुछ का कुछ करवा लेना कितना

सहज था, यह भी उनके नेता जानते थे। जब कहीं अबलाओं पर बलात्कार होता, चाहे वे मुसलमान हों या हिन्दू, उन्हें राक्षसी ढंगों से बेइज्ज़त किया जाता, तो वे नारियाँ इन्हीं नेताओं की दुहाई देती फिरतीं।

जुम्मा ने नूरुद्दीन को सलाम किया, और बोला, "देख लिया तुमने चचा! कैसा मजा आया! आज एक भी तो काफिर गाँव में नहीं है।"

"बड़ी अजीब-सी बात हुई ये तो। पर क्या करते बिचारे? भाग गये अच्छा किया" नूरुद्दीन ने कुछ चिढ़ कर और कुछ उसके मन की बात जानने के लिए कहा।

"अजी जो आज रह जाते तो देखते! वही होता जो कल नसीरपुर में हुआ।" वह एक चिलम भरता हुआ बोला। नूरुद्दीन को बुरा लगा और वह चुप रहा।

"लो पिओ, चचा। बैठ जाओ।" जुम्मा ने चिलम हुक्के पर रख कर उसकी निगाली नूरुद्दीन की तरफ फेर कर कहा। नूरुद्दीन ने दो दम लगा कर कहा, "भाई एक काम से आया था।"

"क्या?" जुम्मा ने अपने राख के हाथों को झाड़ते हुए पूछा।

"थोड़ी सी अफीम की जरूरत थी, घर वाली को दस्त हो गये हैं, एक दवा बनानी है।"

"देखो अब्बा के पास होगी," उसने सामने चारपाई पर बैठे अपने बाप की तरफ़ इशारा करते हुए कहा।

नसीरा अफ़ीम का पुराना आदी था। तोले-छै मासे हरवक्त उसके पास पड़ी रहती थी। उसने झट अपनी डिबिया निकाल कर चार माशे की एक डली उँगलियों पर तोलते हुए उसे दिखाई, "देख रे नूरा! ये हैगी चार माशे की डली। तू कित्ती लेगा?"

"तुम सभी दे दो अगर दे सको।"

"सब क्या करेगा यार ? अरे ये तो कोई बारे आनेकी होगी, ला बारे आने।"

"लाओ !" एक रुपये का नोट निकालते हुए नूरुद्दीन ने उसकी ओर बढ़ाया।

बूढ़े ने अफीम दे दी और बोला, "और चार आने भी दूँ ?"

"तुम्हारी मरजी," मुस्कराकर नूरुद्दीन ने कहा। और उसके दिये हुए चार आने लेकर चल पड़ा। रात भर जागने से उसकी देह में हल्का दर्द था। रात भर भीगने से छप्परों की नमी अब धूप पड़ने से भाप बन कर ऊपर को उठने लगी। दिन काफ़ी चढ़ आया था। और वह हिन्दुओं वाली चर्चा अभी तक चल ही रही थी। रास्ते में दो-चार लोगों ने नूरुद्दीन को टोका और हिन्दुओं के भागने की बातें छेड़ीं, पर नूरुद्दीन ने उन्हें रूखा-सा जवाब देकर टाल दिया।

घर आते ही उसने अफ़ीम अपनी माँ को सौंप दी। अंदर औरतें परेशान थीं, एक कोने में उन्होंने पेशाब और पाखाने फिरना शुरू कर दिया था। एक बदबू उठ खड़ी हुई थी वहाँ। उसी छोटी सी कोठरी में किसी प्रकार भी उन्हें रहना था। उनके बच्चे जग चुके थे और रो-रो कर उन्हें अब तंग करने लग गये थे। जिन बच्चों ने पाखाना फिर दिया था, उनको बिना धोये वैसे ही चीथड़ों में लिए वे वहीं बैठी रहीं। जब बैठे-बैठे उनकी टाँगें अकड़ जातीं तो वे खड़ी हो जातीं। अपने घरों के सुख और काम धाम उनको याद आने लग गये थे।

कि इतने में नूरुद्दीन की माँ ने अन्दर प्रवेश किया।

एक बच्चा बड़ी देर से रोटी के लिये रो रहा था। उसके रोने का क्षीण-सा स्वर कभी-कभी बाहर गली में भी सुनाई दे जाता। उसकी

देखा-देखी दो-चार और बच्चे भी रोटी के लियेजिद करने लगे। रोटी वहाँ कहाँ धरी थी जो उनको मिल जाती? थोड़ा-थोड़ा अनाज था उनकी पोटलियों में, पर कैसे पके और कैसे बच्चे खायँ? उस रोते बच्चे को चुप करने के लिए उसकी माँ ने बच्चे के गालपर एक तमाचा जड़ दिया, और डाँटा, "नास गये! अब तू हमें पकड़वा, तेरे लिये कहाँ से लाऊँ टिक्कड़?" और दूसरा तमाचा मारने को ज्यों ही हुई, बच्चा कोठरी से बाहर निकल कर भाग जाने की चेष्टा करने लगा, कि उधर से आती हुई नूरुद्दीन की माँ दरवाजा रोक कर खड़ी हो गई और उस मारनेवाली से बोली, "भला इसे क्यों मार रही हैंगी रंडियाँ? उलटी चुप करने से तो गई और हल्ला करवा रही हैगी बालक पै, नमक हराम! तू हमें भी पकड़वावेगी जलगी!"

और औरतें धीरे से बोलीं, "ठीक कहो हो जी, ये भला बालक कूं मारने का वखत है? यू और उत्ती चुप करने से तो गई।"

"चुप रहो री! तुमने भी बड़ी आखरी काट रखी हैगी।" और औरतों को डांटती हुई बुढ़िया बोली। बच्चा रोने से रुक गया था, जो दो-तीन और बच्चे रोटी की ज़िद कर रहे थे, चुप हो गये।

फिर बुढ़िया ने उस बालक से कहना आरम्भ किया, "देख लल्ला रोयेगा तो सिपाही से पकड़वा दूँगी, बाहर हैंगे सिपाही। जभी तो तुझे और तेरी माँ को बन्द कर रखा हैगा। रोटी खायगा?"

लड़का सहम कर रह गया, और भीगी आँखों से बुढ़िया के हाथों की तरफ देखने लगा। बुढ़िया फिर एक हिन्दू बूढ़ी की ओर देख कर बोली, "पाँ पड़ूँ जी।"

"तेरे बटे पोते जीतें रहें, तेरी बड़ी उमर हो, कैसे आई?"

"मैं ऐसे आई, कि ये बात है, तुम्हारे बाल बच्चे रो-रो के हल्ला

करें हैं, और बाहर ग्राम में यों हो रही हैगी कि सारे गाम के हिन्दू रात में न जाने कहाँ भाग गये..."

"देखो जी तुम्हारे पाँव छूऊँ जी, हमारा तो पताई. मत दियो! नहीं तो देख बहू (निमा की माँ) हम कहीं की न रहैंगी।" वह बुढ़िया सँभल कर बोली।

"भला क्या बात कही तूने ? अच्छा भला सोच, जो हमें कहना ई होता तो हम तुम्हें लाके क्यों यहाँ बिठार्ती ? क्यों जी, अब बात सुन लो जब बोलियो।"

"अरी तू मुझसे कह नूरा की माँ," दूसरी बूढ़ी बोली।

"पाँ पड़ूँ जी पण्डतानो," पंडतानी आसीस देने लगी, पर नूरुद्दीन की माँ ने कहना शुरू किया, "मैं अफीम लाई हूँ, थोड़ी-थोड़ी इन बालकों को दे दो, जो गोद के हैंगे, दूध में घोल-घोल के दे दो सब कोई। इससे न तो बच्चा रोवें, न हगे, न कुछ। दिन भर मजे में सोता रहेगा, मैं तो यो जानूँ।"

"सच्ची क्या ? मैं तो यो जानूँ हूँ बीरन, कि अफीम से बालकों के हरे पीरे दस्त बंद हो जा हैं, सोने की बात का तो पता नी बीर (नहीं बहन)।"

पास खड़ी औरतों में खुसुर-फुसुर शुरू हो गई, 'तो मैं जरूर लूँगी, अजी थोड़ी-सी मुझे भी, मेरे बालक के लिये दियो, मुझे भी, मेरा भी भतेरा रोवेहैगा...'

उनके एक साथ बोलने और खुसुर-फुसुर करने से एक तरह का दबा हुआ शोर वहीं कोठरी में होने लगा। बुढ़िया ने उन्हें फिर डाँटा। "तुम्हें रत्ती भर सरम नही रही चुड़ेलो! जब तुम्हें खचेड़े फिरेंगे

गलियारों में मर्द लोग तब पता लगेगा। और देख री श्यामा की बहू, तेरी जबान बहुत चले हैगी कैंची सी। निकाल के बाहर कर दूँगी जो फिर साँस ली।"

कह कर बुढ़िया चुप हो गई। औरतें सब एक दूसरे की तरफ खिसियाई-सी देखने लगीं। गौरीलाला की बहू एक तरफ कोने में बैठी इन फूहड़ औरतें की करतूत और उनका फटकार खाना देख रही थी। अपने पास बैठी एक ठकुराइन से बोली, "बहना, कित्ती बेसरम लुगाइयाँ हैंगी, इस मुसलमानी की छाती पर चढ़ी चली जा रही हैंगी, और वो इन्हें गाली दे रही हैंगी, पर ये गंवार तनक भी तो नहीं समीतीं। भला देख!"

"मैं तो बिर मर जाऊँ, पर ऐसी की आधी बात भी न सुनूँ। पर का करूं? दूसरी के घर में आय पड़ी, उसे अखतियार हैगा, जो जी में आये सो कहे वीरन।"

"क्यूँ री, कबलों ऐसे बैठेंगी? मेरा तो जी, चार बरस का रमचन्ना उठतेई रोटी माँगेगा, कैसे करूँगी?" लाला की बहू ने अपनी गोद में लेटे हुए चार वर्ष के रमचन्ना के सर पर हल्का हाथ फेरा।

"का बताऊँ? यहाँ तो पानी पीने कोऊ तो धर्म नहीं", ठकुराइन ने चुपके से जवाब दिया।

गौरी लाला की बहू चलते समय एक कपड़े की पोटली में दूकान से थोड़ी-सी मोमफली, थोड़ी रेवड़ी, थोड़े चने बांधती लाई थी और उसे अपनी मुड़ी हुई जांघों तले दाबे बैठी बातें कर रही थी। वह मन में तो एक प्रकार से संतुष्ट थी कि उसे कुछ भी नहीं करना पड़ेगा। पर अन्य औरतें देखें कैसे करती हैं।

इन लड़ाई के दिनों में गौरीलाला ने काफ़ी रुपया कमा डाला

था। उधर किसानों से सस्ता खरीदना, और फिर उनके ही हाथों उसे मँहगा बेचना। जब कंट्रोल की व्यवस्था सरकार ने प्रजा के हित और सुविधा के लिए की, तब तो गाँव में ब्लैकमार्केट के चोर बाजार की नींव लाला ने ही रख कर काफी धन कमाया। गौरीलाला और उनकी बहू दोनों एक छोटी-सी दूकान में दिन भर ग्राहकों को सौदा देते-देते न थकते थे। प्रायः सभी उन्हें जान गये थे। सारा गाँव लाला और लालायन से अपार धन, उनके कर्ज के भार से दबा हुआ उनके आगे सर झुका कर चलता था। आज उन्हीं लालाकी बीबी सबों से निगाह बचाये न जाने किस बचे-खुचे घमण्ड में अलग-अलग सी बैठी अन्य गाँव वालियों की समालोचना फिर भी कर रही थी।

और वे मूर्ख गरीब औरतें, जिन्होंने लालायन की फटकार पहले भी कभी उधार-सुधार लेने, कम-बढ़ती तोलते समय खाई होंगी। अब भी लालायन की तरफ़ एक कर्जखोर की तरह देख देख लेतीं। और लालायन फिर भी चूँसे हुए व्रण को फिर चूँसने के लिए एक अघाई हुई जोंक की तरह ताक-ताक कर रह जाती।

अफ़ीम सब बच्चों को अपने सामने दिलवाकर नूरुद्दीन की माँ चली गई थी। गोद के बच्चे थोड़ी देर बाद फिर उसके नशे में गड़गप्प हो कर पीती छातियाँ छोड़ कर बेसुध होगये। उन बेसुध बच्चों को वहीं धरती पर लिटा कर वे फिर बैठ गईं।

लालायन ने अपनी धोती के पल्ले से अपनी नाक को दबा रखा था। उसे शायद उन औरतों के कपड़ों और बदन से आती हुई पसीनों और मैल की खट्टी बदबू अत्यधिक अप्रिय लग रही थी। चार-छै औरतें ऐसी भी थीं जिनको इन सारी परिस्थिति की भयंकरता का कुछ भी सोच न था, वे एक ओर बड़े मजे में सोती हुई खुर्राटे ले रही थीं।

(८)

निमाजी ने अपनी चारपाई दुकान की देहलीज में डाल ली थी उसी देहलीज में होकर अन्दर हवेकी में रास्ता था। जाने वाला हर व्यक्ति निमाजी के सामने होकर ही जा सकता था। अलीजान बाहर बैठा एक गाड़ी का जुआ घड़ रहा था।

निमाजी और उसका लड़का दोनों चुप रात वाली बातों को सोच रहे थे। निमाजी तो सोच कर निर्णय पर पहुँच चुका था कि जो कुछ उसने किया, सब बिल्कुल ठीक किया, और जो आगे होगा, वह भी उसके हाथों से तो ठीक ही होकर रहेगा। चाहे सारा गाँव उसके खिलाफ़ क्यों न हो जाय, नूरुद्दीन ने भी तो औरतों को अपने यहाँ छिपा रखा था। पहले तो उसने इतने सारे आदमियों को अपने यहाँ ठहरा लेने में बहुत ज्यादा कुढ़न और बोझ-सा माना। परन्तु जब देखा कि उसके गाँव के सभी मिलने वाले और दो-चार ऐसे भी जिनसे उसकी बोलचाल नहीं थी, आँख नीची किये उसे सलाम कर कर के अन्दर कोठरियों में जा छुपे तो उसका सीना एक बार ऐसे गर्व तथा हर्ष से फूल उठा, मानो वह बल से भरा हुआ तीतरिये बादल का एक टुकड़ा है, और अपने गाँव के हिन्दुओं को ढँक कर उन पर छा गया हो।

हिन्दुओं के भाग जाने की चर्चा उसकी दुकान के आगे भी हुई और होकर रह गई। उनकी बातों में उसने यही बात पाई कि गाँव वाले नहीं चाहते थे कि ऐसी आपत्ति उनके गाँव पर आये। थोड़े ऐसे भी थे जो चाहते थे कि गाँव हिन्दुओं से खाली ही हो जाय तो अच्छा हो, उनका तो विचार था कि जरूर चलनी चाहिये।

अलीजान जुए को घड़ता हुआ अपने बसूले से रंदे का काम लेना

चाहता था। और लकड़ी पर से पतली-पतली परतें सी उतारता हुआ यही सोच रहा था कि अगर गाँव वालों को मालूम हो गया कि इनके यहाँ हिन्दुओं के आदमी छिपे हैं तो सब से ज्यादा बुरा हो जायगा। क्रमशः वह भी इसी नतीजे पर पहुँचता आ रहा था कि सब जो कुछ भी हुआ ठीक ही हुआ।

मुर्गे-मुर्गियों के गोल घरों से निकल कर गलिहारों के कूड़े करकटों को कुरेदते फिरने लगे। रात के पानी बरस जाने से अनाज के दाने धुल कर मिट्टी से ऊपर उभर आये थे। कीड़े-मकोड़े बरसात के बाद निकल ही पड़ते हैं। मुर्गे, मुर्गियाँ उन्हें चुगती खाती फिर रहीं थीं।

मसजिद के सामने सहसा भीड़ जमा हो गई। बात यह थी कि नसीरपुर से भागे हुए कुछ हिन्दू आदमी-औरतें अपने बच्चों को लिये, सारी रात खेतों-खेत घूमते फिरे और अब यहाँ गाँव के पास आ निकले थे। उनमें दो औरतें, दो मर्द और एक डेढ़ साल का गोदका बच्चा था। जब ये लोग इस गाँव के ईखके खेतों में घुस रहे थे, तब ही दो-चार जुलाहों ने जो दिशा-शौच को बाहर गये हुए थे इन्हें, देख लिया और इन बेचारों को गाँव में पकड़ लाये।

उनके सब कपड़े भीगे हुए थे जो उनके बदन से चिपटे हुए लटक रहे थे। औरतों के सर के बाल भीगे हुए, उनके माथों और गालों पर बुरी तरह चिपक गये थे। अपने गोद के बेहोश बच्चे को एक भीगी धोती में लपेटे उसकी माँ एक ओर खड़ी हुई बच्चे को देखती जाती और ठण्ड से काँप रही थी। एक बच्चा और था छै-सात साल का सिर्फ़ एक भीगी कमीज पहने। उसे रात भर रोने नहीं दिया गया था। अब रोने लग गया था। उन पुरुषों का यह हाल था कि बुरी तरह काँपते जाते और बात-बात में लोगों के कदमोंपर सर रख-रख देते। इतने डरे

हुए ये लोग थे कि गाँव के छोटे से बच्चे की तरफ भी डर कर देखते थे। और उनकी ज़रा-सी बात का भी जवाब दे देते कि कहीं ऐसा न हो कि गाँव वाले इनकी थोड़ी-सी बात पर बिगड़ जायँ।

भीड़ इनको घेरे हुए चलने लगी। जब ये लोग नियाज़अली की बैठक के पास पहुँचे तो वह रुक गये। गाँव के कर्त्ता-धरता वे ही थे, इससे हर काम में उनकी सलाह पहले ली जाती थी।

मौलाना वैसे ही परेशान थे। उन पर रात वाली बात का डर सवार था। हिन्दुओं के गाँव से भाग जाने पर वे एक प्रकार से संतुष्ट और निश्चिन्त-से हो गये थे कि मारकाट का झगड़ा ही नहीं रहा। उन्होंने रातके छुरों और भालों की बात किसी से भी नहीं कही थी और न वे कहना ही चाहते थे। उन छुरों और भालों को तो वे वैसे ही पुराल में दबे रहने देना चाहते थे।

सारा गाँव एक भीड़ की शक्ल में जब उनके मकान के आगे आकर आ खड़ा हुआ, तो वे समझे कि नसीरपुर के अब्दुस्समद अपने आदमियों को लेकर चढ़ आये। उनका दिल काँप उठा, कलेजा उनकी छातीमें धकाधक कूदने लगा, उन्होंने चाहा कि कहीं भाग जाऊँ और वे अन्दर जा घुसे।

आँगन में जाकर उतरा, बदहवास चेहरा लेकर वे एक खड़ी चारपाई का पाया पकड़ कर खड़े हो गये। आँगनमें उनके लिये सब चीजें बेजान और फ़नए होने वाली दिखाई देने लगीं। सामने की कोठरी में पुराल के ढेर पर उनकी निगाह जा ठहरी, उसे देखकर वे सिहर कर एक बार अपने आपको भूल गये। उन्होंने एक भयानक सौदा कर लिया, उन्होंने सोचा। बाहर भीड़ का कोलाहल मानो उनका इशारा चाहता था। उसी कोलाहल में छुरे तथा भाले नाच उठेंगे। गुण्डे साम्राज्यशाही के

बल पर, क्रूरता की पराकाष्ठा को पार करके क़ौम के नाम पर निर्दयता और बर्बरता की शैलियों का आविष्कार करेंगे। जिन हाथों ने कभी मनुष्य के शरीर का एक रोम भी पकड़कर न खींचा होगा, वे इन भालों और छुरों की नोकों से शरीर के किसी भाग को बींध कर सामने तड़फ कर मरते हुए मनुष्य प्राणी को कैसे देख सकेंगे? अपने को बिल्कुल भूले हुए मौलाना सोच रहे थे, उन्होंने देखा, उन्हें ऐसा लगा मानो आँगन में कत्ले-आम मचा हुआ है। मुसलमान हिन्दुओं का पीछा करते हुए आँगन भर में घेरो! घेरो!! कहते हुए भाग रहे हैं। हिन्दू मर्द और औरतें चिल्ला कर बचना चाहते हैं। सामने रखे छुरे और भाले मुसलमानों के हाथों में हैं, वे छुरे और भाले ऊपर उठे, और प्राण बचाने वालों के ऊपर गिरे, और घुसे चले जाते हैं, लहू की फुवार बह निकलती है, लाश तड़फती है। मरने वाला, अपने मारने वाले की तरफ़, आँखें पथराए हुए देखता रह जाता है, बड़ी मुश्किल से उसका दम टूटता है। औरतें भागती हैं, सर के कपड़े उतर गये हैं, आँगन में सब ओर के द्वार बन्द हैं, इसी कोलाहल में औरतें हैं कि अपने बच्चों को एक हाथ से लटकाए, राक्षसों के हाथ से कहाँ तक बचें, कि एक कठोर कलाई ने एक का हाथ पकड़ लिया, चूड़ियाँ तड़ातड़ टूट कर धरती पर झनझना कर गिरीं और बिखर गईं, एक चीख निकली, उसके हाथ से किसी ने बच्चा छीन लिया, और निर्दयता से धरती पर उसे पटक मारा, तड़फते बच्चे की छाती पर दानव-सा उस पिशाच का शरीर दोनों पाँव से चढ़ कर खड़ा हो गया। कड़कड़ा कर बच्चे की पसलियाँ टूटती हुई कमर तक बैठ गईं, उसके मुँह, कान, नाक, आँखों से रक्त निचुड़ आया। उसकी मासूम आँखों के ढेले उबल आये, जीभ छः अंगुल बाहर निकल कर रह गई। स्त्री, उसकी माँ, उसे देख कर, 'मेरे

लाल !' भर कह पाई कि उसे मादरज़ाद नंगा कर दिया गया और...

नियाजअली आगे नहीं सोच सके। उनका सर चकरा गया। उन्होंने दोनों हाथों से अपनी आँखें बंद कर लीं। फिर आँखें खोलीं तो वही आँगन, एक ओर वही तीन घड़े, बर्तन उलटे-सीदे पड़े थे। और कुछ नहीं। कैसा विचार, कैसा परिणाम ? उन्होंने देख लिया कि कौम के खादिम अब्दुस्समद इन छुरों और भालों से क्या करवायेंगे। उन्हें एकदम गौरी लाला याद आ गया। गोल दोपहली टोपी मैला कुर्त्ता, मैली धोती पहने जहाँ मिलते, 'खाँ साहब सलाम !' वह कहता, 'सलाम भाई लाला ! क्या हाल है ?' ये पूछते। बनिये की जात, पर शरीफ़, बेउज्र। गाँव में कभी किसी से कोई बुराई न ली सोई उसकी बीबी...!

नियाजअली सोच ही रहे थे कि बाहर से जुम्मा ने आवाज दी "अजी मौलाना ! बाहर तो आओ !"

सुन कर पहले तो वे चुप रहे, कि इतने में फिर उसी कोलाहल में से जुम्मा ने उन्हें पुकारा, "मियाँ नियाजअली साहब, बाहर तो आओ !"

जिसका कोई लक्ष्य नहीं होता; जिसका जैसे कुछ अपना मत निश्चित नहीं होता, कुछ ऐसे ही मौलाना आखिर बाहर आकर खड़े हो गये। गाँव वालों के लिये सब-कुछ कर्त्ता-धर्ता, पर स्वयं अपने लिये अपनी एक बेकार हस्ती लिये हुए वे खड़े थे। 'सलाम मौलाना' की झड़ी लग गई।

"क्या बात है ?" मौलाना ने उतरे हुए चेहरे से पूछा।

"ये नसीरपुर के आदमी हैं, साहब। भागकर आ गये हैं, देखो तो !"

मौलाना ने आगे बढ़कर देखा, दो औरतें, दो मर्द, एक पाँच-छै-सात साल का बालक और एक गोद का बच्चा। उन औरतों की सूरत देखने को लोग एक दूसरे पर टूटे पड़ते थे। वे सब भीगे हुए, चारों तरफ भीड़ से घिरे होने से, धूप के न आने से ठण्ड से काँप रहे थे।

"अरे कम्बख्तो! इनकी धूप तो छोड़ दो!" मौलाना ने भीड़ के लोगों से कहा।

"नहीं साहब, कोई बात नहीं," उन हिन्दुओं में से एक ने उस भीड़ की ही बात ऊँची रखते हुए कहा। यद्यपि वे चाहते थे कि भीड़ हट जाय, धूप पड़े या फिर हम कहीं भाग जायँ।

"तो कब के भागे हुए हो तुम लोग?" मौलाना ने पूछा।

"सरकार, कल शाम के, जभी से भाग लिये हैंगे। बस ऐसे ही भागे जान लेकर।"

"वहाँ कैसे-कैसे हुई?"

"हमें कुछ पता नहीं, साहब।"

दूसरा बोला, "जब मारकाट होन (होने) लगी हम सब भाग खड़े हुए बस, कुछ पता नहीं फिर क्या हुआ।"

भीड़ एक तरफ को हो गई। उन पर धूप पड़ने लगी। एक सुखद गरमी-सी उन्होंने धूप में पाई, पर चारों ओर मुसलमानों से घिरे होने से मन में अत्यन्त डरे हुए थे। उनको यह भी मालूम हो गया था कि यहाँ के भी सभी हिन्दू रात-रात ही में भाग खड़े हुए।

उनको ऐसा लगा मानों जो भाग गये हैं वे हम से हजार गुना ज्यादा अच्छे रहे, और अब हम लोग बुरे फँसे। उनको भीड़ वालों से दहशत-सी लगने लगी। कहीं ऐसा न हो कि उनके पास छुरे हों, और हम पर पिल पड़ें।

नियाजअली ने उनकी दशा देखते-देखते एक बात सोच डाली, कि अवश्य ही शीघ्र नसीरपुर से दस-पाँच आदमी यहाँ आयेंगे, या फिर अब्दुस्समद स्वयं आयेगा। और ऐसी दशा में उन भागे हुए हिन्दुओं का गाँव में रहना ठीक नहीं है। वे उपाय सोचने लगे कि क्या किया जाय? कैसे इनकी रक्षा की जाय? गाँव के हिन्दू तो भाग ही गये, और ये बेचारे बिन आई मौत के मुँह में आ फँसे। फिर गाँव वालों ने भी तो इन्हें देख लिया है।

बड़ी कठिन समस्या थी उनके आगे, इतनी बड़ी भीड़ में से उनको निकाल कर कहीं भेजना, छुपा देना वे कैसे करें? आखिर उन्होंने भीड़ से कहा कि ज़रा-सा कूड़ा-कबाड़ लाकर, आग जला कर उनको तपावें, उनके हाथ-पाँव सिकवावें और फिर उन हिन्दू मर्दों में से एक से बोले, "सुनो तो, जरा यहाँ आओ।"

वह बेचारा जाड़े के मारे कन्धों को ऊपर उठाये ठण्ड के मारे दोनों हाथों को नीचे लटकाये, मुट्ठियाँ बाँधे, नियाज़अली के पीछे हो लिया। भीड़ के चार-पाँच आदमी मौलाना और उसके पीछे-पीछे आने लगे, पर मौलना ने उन्हें आने से मना कर दिया।

अपनी बैठक में लाकर उन्होंने उसे खड़ा कर दिया। गाँव वाले दो-चार आदमियों ने अन्दर आना चाहा कि फिर मौलाना ने उन्हें रोकते हुए कहा, "देखो, मैं आप से मना कर चुका कि यहाँ न आओ, फिर भी आप नहीं मानते। मैं जरा इनसे बात कर लूँ।"

लोग बाहर निकल आये, कि मौलाना उससे बोले, "तुम क्या चाहते हो? और कैसे यहाँ आ गये भला मरने?"

वह मौलाना का मतलब नहीं समझा और चुप खड़ा रह गया। फिर मौलाना उसकी ओर देख कर बोले, "समझे नहीं मतलब कहने का?"

"मैं सरकार समझा नहीं," वह बोला।

"मतलब ये कि यहाँ कैसे आ फँसे तुम ? और अब क्या जी में है तुम्हारे ?" फिर चुपके से उससे बोले, "तुम्हारे जी में अपनी जान बाचाने की भी है या नहीं ? मैं पूछता हूँ तुमसे।"

"साहब जान बचाने की न होती तो यहाँ कैसे आ जाते हम ?"

"तो अब जी में क्या है तुम्हारे ! यहाँ गाँव में तो रहना ठीक है नहीं तुम्हारा।"

"अब तुमही बताओ, साब।"

"जान बचाना चाहो तो देखो एक तरकीब है बस, कि या तो तुम सब देखो.........मुसलमान हो जाओ ...." उन्हें बड़ी मुश्किल से ये बातें कह सके मौलाना।

"अजी साब ! आप बड़े आदमी हैं फिर ऐसी बात........" वह जरा दाँत निकाल कर बोला, कि मौलाना ने फिर कहना आरम्भ किया, "देखो तुम्हारी सब की जान बच जायगी, अपना मजे में कहीं घूमो-फिरो, कोई तुम्हें एक हरुफ भी नही कह सकता। अगर भाई देखो, अगर नहीं मानते हो, तो देखो मैं भीड़ हटाये देता हूँ, पर तुम यार, हो जाओ मुसलमान....।" कहकर उन्हें अपनी बीबी की रात वाली बात याद आ गई, जब उसने कहा था, कि मियाँ तुम तो जित्ते भी बना सको उत्ते मुसलमान बनाइयो।"

"बात सुनकर वह हिन्दू असमंजस में पड़ गया। मौलाना बात करने में इतने चतुर नहीं थे, कि जल्दी उसे भय दिखा कर उस पर रंग जमा देते। मजहबी मामले में कट्टर मुसलमान होते हुए भी इन्सानी फर्ज (मनुष्यता के कर्त्तव्य) से गिरना नहीं चाहते थे। महात्मा गाँधी की प्रार्थना के शब्द जो नूरुद्दीन ने अखबार पढ़कर सुनाये, कि पवित्र इस्लाम

का धर्म जबर्दस्ती नहीं फैलाया गया था, और न कोई आदमी जबर्दस्ती मुसलमान बनाने से मुसलमान बन जाता है; मन से इस्लाम क़बूल (ग्रहण)करने से ही उसका सच्चा मुसलमान होना अच्छा होता है, उनको याद थे;वह इसी से जबर्दस्ती करना नहीं चाहते थे।

उन्होंने उससे कहा, "देख मेरे कहने का मतलब यह है..। देख तू किसी से कहेगा तो नहीं ?"

"नहीं साब ! कैसा कहना।"

"तो देख, यहाँ शाम को आज बाहर से दो सौ आदमी आवेंगे और हिन्दुओं को चुन चुनकर मारेंगे, यहाँ के हिन्दू तो भाग गये, और तुम जाने कहाँ से आ मरे अपनी जान देने के लिये ? इसी से से कहता हूँ कि भाग जाना चाहो तो बात दूसरी है, नहीं तो भैय्या सीधा रास्ता है मुसलमान बन जाओ।"

उधर भीड़ का घपला सुनकर नूरुद्दीन के होश उड़ गये। वह भी यही समझा कि बाहर से आदमी आ गये। खबर लेने के लिये वह भीड़ की तरफ चला। मौलाना की बैठक के आगे जाकर देखा कि गाँव के लोगों की भीड़ लग रही है, अपनी-अपनी बातें सब कर रहे हैं, एक ओर एक हिन्दू, मर्द, दो औरतें, एक छोटा बालक धूप में खड़े हैं, उनके सारे कपड़े भीगे हुये थे, और वे ठण्ड के मारे काँप रहे थे। उस आदमी को नूरुद्दीन जानता था, वह नसीरपुर का बढ़ई था। आगे बढ़ कर उस आदमी से वह बोला, "दौलत ! यहाँ कैसे ? क्या बात है ?"

अपना नाम सुनकर एक बार दौलत ने नूरुद्दीन को देखा, और बोला, "सलाम भय्या !" और फिर रुककर बोला, "अब क्या बूझो हो ? बखत, (समय) की बात है, सारी रात ऐसे ही बीत गई लुकते-छिपते, अब तुम्हारे गाम में भी यही घपला दीखे है मोको।"

"अरे कोई घपला ना है। तुम यहाँ क्यों खड़े हो ? घर चलो, वहाँ आग-वाग हो जायगी, हाथ-पाँव सेंक लियो, लत्ता कपड़े बदल लिओ, बाल-बच्चों को आराम मिल जायगो चलो।" नूरुद्दीन के मन में फिर रातवाली बात ने जोश खाया, और वह उन्हें भी बचाने की तरकीबें सोचने लगा।

"अच्छा फिर चलो," दौलत को नूरुद्दीन की बातों में प्रेम और सच्चाई की झलक दिखाई दी। "जरा नौबत को आ जाने दो, अन्दर मौलना के साथ बात हो रही है उसकी।"

"अरे क्या नौबत भी हैगा साथ ?"

"हाँ।"

"कहाँ, अन्दर मौलना की बैठक में है ?"

हाथ से बैठक की ओर इशारा करके दौलत ने कहा, "वहाँ अन्दर।"

नूरुद्दीन चल पड़ा बैठक की ओर, और अन्दर घुस गया। मौलाना उसे देखकर पहले तो चिढ़-से गये और कहने को हुए कि बाहर रहो, पर नूरुद्दीन की आदत को वे जानते थे, दूसरे नूरुद्दीन गाँव के भले लोगों में से था, उसे टालना ठीक नहीं था।

"सलाम, मौलाना !" कह कर नूरुद्दीन ने उनकी बातों में विघ्न डाल दिया। और बोला, "तो मौलाना इन्हें मेरे घर भेज दो न। वहाँ आग-पान सभी कुछ हैगा, हाथ-पाँव सेंक लेंगे बेचारे, यहाँ तो..."

"मैं जरा बात कर लूँ, तब ले जाना," मौलना बोले।

"अजी देखो बात फिर कर लेना, देखो ना काँप रहे हुंगे जाड़े के मारे। अब ये जायँगे थोड़े कहीं यहाँ से, जब आय गये।"

"अच्छा हाँ ठीक है, अच्छा फिर सही।" मौलना बदहवास से हो गये थे, उन्हें सूझ नहीं रहा था कि क्या करूँ, क्या न करूँ ? अपने ऊपर

से एक बोझ को टालना चाहते थे वे।

सबों को लिये-लिये नूरुद्दीन अपने मकान के आगे आ खड़ा हुआ, भीड़ बराबर उनके पीछे थी। बहुत से तो अपने-अपने काम पर चले गये थे, थोड़े से बेकार तमाशबीन अब भी पीछे लगे फिर रहे थे।

बाजरे के दो पूले नूरुद्दीन ने लाकर खड़े कर दिये, और उनमें आग लगा दी। पूले सूखे थे, होली-सी जल उठी। तमाशबीन हथेलियाँ फैला-फैला कर तापने बढ़े कि नूरुद्दीन ने उन्हें फटकारा, "यहाँ नहीं तापोगे! चलो तुम्हारे लिये किया है मैंने ये?"

"तो फिर इन्हें ही तापने दो," एक बोला उन हिन्दुओं में से।

"नहीं जी! जाओ चलो! कोई तमाशा हैगा यहाँ? चलो!"

नूरुद्दीन ने भीड़ से कहा, और उन हिन्दुओं से बोला, "आओ आगे आके सेंक लो।"

वे आगे बढ़के हाथ-पाँव सेकने लगे, दो-चार लकड़ियाँ जले बाजरे के पूलों से और लगा दीं। आग और बढ़ चली। उनके कपड़ों से भाप उठने लगी। गरमाई में एक अपार सुख तथा संतोष उन्होंने पाया।

नूरुद्दीन से नौबत बोला, "नूरुद्दीन एक बात तो बताओ।"

"क्या?"

"अब आग तापने से तो काम चलेगा नहीं, तरकीब बताओ कुछ।"

"तुम अभी चुप रहो, जाने दो इन थोड़े से आदमियों को, तब बताऊँगा," धीमे से नूरुद्दीन ने कहा और रहे-सहे सात-आठ गाँव के आदमियों से बोला, तुम नहीं गये क्या अभी? अरे कोई रंडी नाच रही है यहाँ पर? बाजीगर का खेल हो रहा हैगा? चलो, अपने-अपने काम देखो!"

भीड़ थोड़ी और छँटी। रहे-सहों से नूरुद्दीन कहने लगा, "और तुम क्यों खड़े रह गये, बढ़ो चलो!"

वहाँ नूरुद्दीन और वे ही लोग रह गये। "हाँ अब कहो", नूरुद्दीन ने नौबत से कहा।

"बात ये है कि जो हम यहाँ बच सकें, तो यहाँ रहें, भय्या, नहीं तो हमें कहीं को सटका दो, बस मुल्लाजी। और वे जो बैठकवारे (वाले) हैं, वे तो कह रहे थे कि मुसलमान हो जाओ तो बच जाओगे। भला कैसे हो जायँ? तुम्हीं बताओ!"

"नहीं जी तुमको यहाँ रहना होगा, तरकीब", और उसके कान के पास लग कर सारी बातें बता दीं कि किस प्रकार उसने औरतों को अपने घर में छुपा लिया और किस प्रकार निमाजी के यहाँ मर्द छिपे हुए हैं।

नूरुद्दीन उनसे कहता जा रहा था और गीली धोती में लिपटे उस बच्चे को देख देख लेता था, जो अपनी माँ की गोद में लेटा बुरी तरह उलटी साँसें ले रहा था। उसकी पसलियाँ प्रत्येक साँस में ऊपर नीचे चलती थीं। चेहरा तमतमा कर लाल हो रहा था।

"अरी इसकी पसलियाँ चल रही हैंगी क्या?" कह कर नूरुद्दीन ने बढ़कर बच्चे को देखा। उसकी माँ रोने लगी। बच्चे को सारी रात ठण्ड लगी और निमोनिया ज्वर से उसके फेफड़ों में बलगम ही बलगम हो गया था। बड़ी कठिनाई से उसे श्वास आती थी। पाँचों आदमियों का ध्यान उस बच्चे पर गया। उसके बाप दौलत ने आगे बढ़ कर बच्चे को देखा और आँखों में आँसू भर कर बोला, "तो भई इन्ने बिचारे ने का खता करी, देखो, अब मरना ही है तो मर जाने दो, का करें? और आँसुओं की धारा उसकी आँखों से, कलेजे तक निचुड़ती

हुई बह निकली।

दोनों औरतें रोने लगीं कि नूरुद्दीन बोला, "अरी पागल हुई हो क्या? रोने से भीड़ इकट्ठी हो जायगी फिर यहाँ। और देखो होनहार तो होकर रहेगी, तुब रोओ मती।"

दौलत ने बच्चे को अपनी गोद में ले लिया कि उसका दम निकल गया।

घर से बेघर, दूर, धधकती चार लकड़ियों के आगे, अपने मरे हुए बच्चे को लिये दौलत होंठ चबाता, अपना कलेजा मसोस कर रह गया। एक क्षण में उसे बच्चे की कल की बात याद आ गई कि किस तरह अपने छोटे से आँगन में वह किलकारियाँ मारता हुआ हँस रहा था, और आज वही अपना छोटा-सा मुँह बाये-का-बाये मुरदा होकर पड़ा है।

औरतों ने नूरुद्दीन की बातें सुन ली थीं, अपनी साँसों की घूटें भर कर रह गईं। उनकी रोने की हिम्मत न पड़ी। और नूरुद्दीन लाचार था, क्या करे, क्या न करे?

इधर-उधर देख कर नूरुद्दीन ने उनसे कहा, "मौका रोने का नहीं हैगा, और देखो, अब कोई देख नहीं रहा है, तुम औरतों को अन्दर घर में भेज दो, और तुम हम चलें बच्चों को दफन कर आवें, ये तो करनाई हैगा।"

एक साँस भर कर दोनों औरतें उठीं, फिर बैठ गईं। कोई सामने से निकाला जा रहा था। उसके चले जाने के बाद वे फिर उठीं और चल पड़ीं। बच्चे की माँ ने एक बार मुड़ कर अपने मरे हुए बच्चे की ओर देखा और छाती पीटने लगी, कि नूरुद्दीन की माँ ने उसे समझाते हुए डाँटा, "अरी पगली, चुप न रहा जाता तेरे से, मत्रे

(मरने) वाला तो खुदा के घर चला गया बहना, रोने से कोई लौट थोड़ेई आवे है वो ? और देख रोने का बखत नहीं हैगा अब ।"

दोनों आदमी बाहर रह गये थे । वह बच्चा मुँह फैलाये का फैलाये ही रह गया, उसकी दूध पिलाने वाली सदा के लिये उससे बिछुड़ गई ।

दोनों बच्चे को लेकर चल पड़े, नूरुद्दीन उसके संग चला । रास्ते में निमाज़ी का घर पड़ता था । वहाँ तीन-चार आदमी बैठे इन आये हुओं की ही चर्चा कर रहे थे । उस बच्चे को लिए जाते हुए उन दोनों के साथ चलता हुआ नूरुद्दीन निमाजी के घर के सामने जा खड़ा हुआ ।

"क्या बात है ? अरे क्या मर गया वह बच्चा ?" एक ने उठ कर बच्चे को देखते हुए कहा । बच्चा सयाना और जिन्दा होता तो बोल उठता । पर वह उसी तरह मुँह बाये हुए, उसी भीगी धोती में लिपटा अपने बाप की गोद में मुर्दा पड़ा था, क्या कहता ?

"हाँ भाई मर गया ।", नौबत ने उस आदमी से कहा और नाक को अंदर सुड़का ।

"अब इसकी मिट्टी ठिकाने लगा-लुगू दें", नूरुद्दीन कहकर आगे बढ़ गया । उन आदमियों के सामने वह और न बोला । साथ में उसने अलीजान को ले लिया था ।

गाँव से बाहर आकर अलीजान को उसने समझा दिया कि जब तक हम तीनों लौट कर आवें, तुम अपने घर के आगे एकत्रित आदमियों को हटा दो, ताकि लौटती बार ये दोनों भी तुम्हारे घर में छुप जावें । बात तय हो जाने पर अलीजान लौट आया । उधर नूरुद्दीन ने उन लोगों को समझा दिया था कि लौटती बार निमाज़ी के घर में उन्हें छुप जाना चाहिये ।

वे गाँव से बाहर दूर बच्चे को दफनाने ले गये। नौबत और दौलत दोनों ने एक तालाब के किनारे गढ़ा खोदना आरम्भ किया। बच्चा एक ओर को पृथ्वी पर भीगी मैली धोती के टुकड़े में लिपटा पड़ा था, सदा के लियें धरती में दब जाने के लिए माँ से बिदा ले आया, अब बाप से और बिदा माँग लेगा।

जिस भूमि को वह भी बड़ा होकर मातृभमि कह कर दम भरता, जिस भूमि पर शताब्दियों से आपसी जाति-भेद ने कभी ऐसा भारत-व्यापी कलह का रूप धारण नहीं किया था, जिस भूमि पर गृह-युद्ध को जन्म देकर पश्चिमी गिद्ध अब भी अपने गड़ोये हुए पंजे उठाना नहीं चाहते थे, और ललचाई आँखों से देख रहे थे इस रक्तपात को! और ऐसे निर्दोष बालकों के रक्त से उनकी पिपासा शान्त नहीं होती थी, और उस हाहाकार के कोलाहल में चीखती-चिल्लाती नारियाँ, और उनके नग्न स्वरूप को देख कर उनकी नारकीय अग्नि-तृष्णा नहीं बुझती थी। उनकी वेदी पर सहस्रों बलिदान हो जाने वाले बालकों में से दौलत का एकलौता बेटा सुमेरा भी भेंट चढ़ चुका था।

सारी दुनिया ने यद्यपि उसे मरते नहीं देखा, पर नूरुद्दीन और थोड़े से उत्साही हिन्दोस्तानियों ने तो देखा और वे सदा याद रखेंगे। और जब तक जीते रहेंगे, यह कथा जब कहने बैठेंगे, तो सुनने वालों के दिल थर-थर काँप उठेंगे, उनका कलेजा दहल उठेगा। इन अमर कथाओं के सुनने वाले बालक और पैदा होने वाले जब पैदा होकर बड़े होकर सुनेंगे, और उनको इतिहास सुनायेगा, और जब उनको सुनना पड़ेगा, तो वे लज्जा से अपनी आँखें नीची कर लेंगे। जब उनको इतिहास बताएगा कि एक विदेशी के कहने में आकर उसकी दासता में रहने की लालसा में, उसके भुलावे में आकर, भारत के भाई-भाई कट मरे थे।

वे पढ़ेंगे कि भारत इतना अंधा हो गया था कि दूसरे के हित के लिये भाई को अपने भाई का गला काटते दरद न आया। तो वे क्या कहेंगे? ज़माना छी-छी कर उठेगा।

ऐसे-ऐसे विचार नूरुद्दीन के मनमें आते और फिर दूर चले जाते। बच्चे के पास बैठा, वह पास के तालाब से उठती हुई भाप को देख रहा था, जो कुहरे की तरह सारे पानी की सतह से उठ कर हवा में लुढ़कती हुई, उसी हवा में खो जाने के लिये नूरुद्दीन के विचारों की गति की तरह पूरब की ओर भागी चली जा रही थी।

गढ़ा खोद कर उन्होंने बच्चे को उठा लिया, और उसे सहज में गढ़े के नीचे उतार अन्तिम बार, दौलत ने बच्चे की सूरत उसके मुँह का कपड़ा उठा कर देखा। और नौबत से बोला, "ले देख ले भैय्या सुमेरा को, अब जाय रहा है बच्चा गढ़े में।" वह आगे न बोल सका, उसके होंठ फड़के, आँखें डबडबा आईं, और नौबत, उस बच्चे से लिपट कर रह गया।

सुमेरा पर मनों मिट्टी चढ़ा दी गई। एक मिट्टी का ढेर बना कर वे हाथ-पाँव धोकर लौट पड़े। कुछ दूर आकर नौबत ने मुड़कर उस ढेर को देखा, जहाँ अपने सुमेरा को वह अकेला छोड़ आया था। उसका जी चाहा कि आमरण वहीं कब्र के सिरहाने बैठा रहे, पर ऐसा नहीं हो सका।

"अब बताओ," नूरुद्दीन ने उनसे पूछा।

"का बतावैं भैय्या? हमारा तो दिल ठिकाने ना है, नास हो गया हमारा तो।"

"सो तो मैं जानू हूँ, पर भैया आगे की सुध लो, अब तो जो होना था हो गया! जिसकी चीज थी उसने ले ली।" नूरुद्दीन ने एक

बार गाँव की मसजिद के मीनार की तरफ देखकर कहा। सामने खजूर के पेड़ों के झुरमुटों के उस तरफ गाँव के घरों की दीवारें, छप्पर, खपरैलें और उस मसजिद के दोनों मीनार खजूरों में छनते हुए दिखाई दे रहे थे।

"हाँ जी, अब तो अपनी ही फिकर रह गई, जाके मारे रात भर लिये-लिये फिरे वो तो हाथ से गया। तो क्या करें बताओ।" ठण्डी साँसें लेकर नौबत बोला।

"तुम निमाजी के घर जा छिपो, बस अगर हो सके। या यहीं कहीं छिप जाओ, मैं तुम्हारे लिये सूखे कपड़े निमाजी के यहाँ पहुँचा दूँगा। अगर वहाँ छिपे, मुझसे कोई पूछेगा तो मैं कह दूँगा कि बच्चे को दबाने गये थे, लौटे ही नहीं, बस और क्या।"

"तुम जैसा कहो," फावड़ा अपने कंधों पर रखता हुआ दौलत बोला। वे चल रहे थे और बातें करते आ रहे थे।

निमाजी के घर के आगे से आदमी हट गये थे। दोनों उसके मकान में ही जा घुसे।

६

लोगों को अचरज न हुआ, जब उन्होंने देखा कि वे नसीरपुर के भागे हुए हिन्दू फिर भाग गये। पहले तो उन्हे यकीन न हुआ, फिर जब उन्होंने बच्चे के मरने की बात और उसकी नई कब्र को देख लिया तो वे समझ गये कि जरूर वे लोग भाग ही गये। दो-चार ने नूरुद्दीन पर शक भी किया और पूछने लगे, "क्यों मियाँ, तुम्हें जरूर मालूम होगा उनका पता, तुम्हीं तो लिवा लाये थे उन्हें नियाजअली की बैठक से?"

"मैं कोई उनका चौकीदार थोड़े ई हूँ, जो उनके पीछे-पीछे

फिरता ?"

"क्यूँ ! और लिवा क्यूँ लाये, नियाजअली की बैटक से ?"

"अरे ! उन्हें जाड़ा लग रहा था, लिवा लाया। उनका बालक मर गया, वे उसे दफनाने ले गये। साथमें मेरा फावड़ा भी गया।" झूठ बोल कर नूरुद्दीनने अपनी जान छुड़ाई।

ऐसे ही दिन ढलना शुरू हो गया। उधर नियाजअली के पेट का पानी पानी होने लगा। बार-बार जम्हाइयाँ आतीं और जातीं। उन्होंने दोपहर को फिर बाहर का दरवाजा बंद करके उन छुरों और भालों को वहाँ से हटवा दिया। एक गढ़ा खोद कर उन्होंने उन हथियारों को वहाँ दबा दिया, ऊपर से मिट्टी डाल कर थोड़ी-सी पुराल रख दी, और बेफिक्र-से हो गये; पर दिल में धुकधुकी बराबर बनी रही।

उधर नूरुद्दीन का दिल न माना। उसे बराबर नियाजअली की तरफ से चिन्ता बनी रही, क्योंकि उसे पता था कि रात जो छुरे और भाले आये हैं, उनका जो कुछ होना होगा वह या तो हो गया होगा, या फिर हो जायगा। उससे न रहा गया। और निमाजी से सलाह करके वह नियाजअली की तरफ चला।

नियाजअली से उसे यह पूछना था कि उन छुरों और भालों का क्या होगा, और उनकी स्वयं की क्या मरजी है ? और क्या उनके दिलमें है ? उसने यहाँ तक सोच लिया था कि अगर इस मामले में नियाजअली से उसकी बिगड़ भी जावेगी, तो कोई परवाह नहीं। सुबह की घटना से, जब से उस बच्चे को दफनवा कर वह आया था, एक चोट खाये हुये जानवर की तरह उसका मन अस्थिर था। उसी आवेग से वह चल पड़ा।

गाँव भर में एक बेरौनक़ी छाई हुई थी। अधिकांश घरों के द्वार

सुबह से ही नहीं खुले थे। उन झायँ-झायँ करते उदास घरों के आगे गाँव के थोड़े से बच्चे गीली मिट्टी की चपटी-चपटी टिकिया बना-बना कर बनाते-बिगाड़ते हुए खेल रहे थे। हिन्दुओं के अधिकांश पशु भूखसे रंभा-रंभाकर चुप हो गये थे। भूख और प्यास से उनकी कोखों में गड्ढे पड़ गये थे, और एक अटल सत्याग्रही की तरह अब मौन खूँटों से बँधे खड़े थे। दो-चार भले आदमियों ने अपने पड़ोसियों के ढोरों के आगे थोड़ी-बहुत पुराल डाल दी और दुपहर में पानी भी दिखा दिया था। इनके नीचे का गोबर साफ न होने से उनके खुरों से कट-कट बिखरा हुआ था।

एक अजीब-सा अकेलापन, चलते हुए नूरुद्दीन ने अपने और सभी गाँववालों के ऊपर देखा, जिसे देखा वह अपना पड़ोस उजड़ जाने पर खुश नहीं दिखाई देता था। गाँव पर एक 'मरी' सी छा कर ठहर गई थी। गौरी लाला की गाय रस्सा तुड़ाय गली गलियारों में अवारा फिर रही थी, कोई उसे बाँधना नहीं चाहता था। लोग उसे देख कर गौरी लाला की ही याद कर लेते, उस गाय में एक प्रकार से गौरी लाला का गौरी लालापना था, इससे उसे कोई कुछ नहीं कहता था। पेट भरे हुए वह जुगालती-जुगालती अपने खूँटे की तरफ लौटी आ रही थी, कि नूरुद्दीन को देखकर बिदकी और हुंकार कर पीछे को भाग खड़ी हुई। एक कुत्ता भौंकता हुआ उसके पीछे दौड़ पड़ा।

सामने रात वाला लक्कड़ पेड़ के नीचे अब भी पड़ा था। उसी पर बैठे-बैठे नूरुद्दीन ने नियाजअली की बैठक में होने वाली रात की घटनाओं को देखा था। और रात के गधों की करी हुई लीद अब सूख कर चलने फिरने वालों के पैरों तले आ-आकर, बिखरे हुए गोबर की तरह थोड़ी-सी जगह में फैली हुई थी। नूरुद्दीन के दिल में एक बार

तो कुछ डर-सा लगा, एक हौल···सी उठी, पर अपने को सँभाल कर वह बैठक के बन्द दरवाजे के आगे जा पहुँचा, और मौलाना को आवाज दी।

ऐसे ही दिन ढलने को हो रहा था। आसमान साफ था। बादलों के अकेले दुकेले से टुकड़े कहीं-कहीं पर भूले-भटके-से दिखाई दे रहे थे। जैसे उन्हें भी उनके साथी छोड़ कर भाग गये हों। छत पर एक बिल्ली अपने पंजों से बार-बार अपने मुँह को साफ कर रही थी। चार-छः कौए उसके ऊपर काँव-काँव करते हुए न जाने क्यों उसे छेड़ने में लगे हुए थे।

मौलाना ने किवाड़ खोले। नूरुद्दीन को देखकर वे एक बार तो सहम गये पर दूसरे क्षण जब नूरुद्दीन ने उन्हें सलाम किया, तो वे मुस-कराते हुए बोले, "कहो कारीगर, भाई मिस्तिरी (मिस्त्री)! आओ बैठो, कैसे आना हुआ?"

"आप से ही कुछ काम था, कुछ फुर्सत हो तो कहूँ?"

मौलाना चारपाई पर बैठ गये, नूरुद्दीन पास पड़े हुए एक टूटे-से पुराने मूढ़े पर बैठ गया। मूढ़े की गद्दी की जगह के सब बुने हुए बान टूट चुके थे, नूरुद्दीन आधा उसमें समाकर रह गया। टूटे निकले हुए सेंठे, उसकी जंघाओं में एक बार गड़े और फिर कोई बात न हो जैसे, वह सँभल कर जम गया। सामने दीवे की चिकनाई से ताक चिकटा-सा चिकना, और ऊपर उसके धुएँ के काजल से काली-काली-सी कालिमा क्रमशः हल्की होती हुई चली गई थी। ताक और छतों की कड़ियों के जालों में मकड़े सिकुड़े हुए बैठे थे। ताक में एक मकड़ा अपनी लम्बी लम्बी टाँगों पर जाले में ही न जाने आगे-पीछे क्यों हो रहा था। नूरुद्दीन उसे देखता हुआ नियाजअली से बोला, "बात यह है कि आप जानते ही हैं कि गाँव के सारे हिन्दू भाग गये।"

आग और पानी

"हाँ जी भाग तो गए साब," नियाज़अली ने कहते-कहते हुक्के की चिलम उतार ली कि नूरुद्दीन ने फ़ौरन कहा "मैं हुक्का न पीने का, अभी आप तकलीफ न करें मौलाना।"

"अरे नहीं भाई, हुक्का भरूँ ?"

"नहीं जी कोई नहीं पीयेगा, आप पियो तो भर लें।"

"अच्छा रहने दो, हाँ फिर ?"

"फिर यह कि देखो एक बात कहूँ जो बुरा न मानो।"

"मैं काहे को बुरा मानता ? और भई बात तो कहो।"

"बात यह है कि (धीरे से) रात जो सामान आपके यहाँ आया, उसका क्या हुआ ?" कहकर नूरुद्दीन ने नियाजअली की तरफ ऐसे देखा, जैसे कोई किसी अपराधी की तरफ देखता हो, कहते ही नूरुद्दीन का दिल धकधका तो उठा, पर नियाज़अली का भी चेहरा फक़ हो गया। उन्होंने गढ़ों में धँसी बेबस आँखों से नूरुद्दीन की तरफ देखा, मानों उन्हें अपराध स्वीकार है और वे अपराधी हैं।

"कैसा सामान भई......?" उनका हलक एकदम सूख कर रह गया, बात पूरी न निकल सकी।

"आप घबरावें नहीं, मैंने किसी से नहीं कही मौलाना, मेरा मतलब उन छुरों और बल्लमों से है, जो रात गधों पर लद कर आपके पास आये हुंगे।"

मौलाना उत्तर देने के बजाय नूरुद्दीन के चेहरे की तरफ ताकते रहे, फिर बोले, "मेरे यहाँ छुरे बल्लम कहाँ से आये मियाँ ?"

"देखो मौलाना ! तुम तो झूठ बोल कर बात साली का नास कर रहे होगे, मैंने जब उन्हें अपनी आँखों से उतरते-रखते देखा है, दो आदमी लाए थे, दो गधे पर लाये थे, तुम्हारे बल्कि घर से (बीबी) भी

मौजूद थी रात...भला मुझसे..."

मौलाना ने नूरुद्दीन का कंधा एक हाथ से पकड़ लिया और बोले, "देख यार, किसी के कहने की जरूरत नहीं है, वे आये जरूर, पर क्या करूँ ! मेरे लिए तो बवाल आ गये, मैंने तो उन्हें धरती में दबा दिया, भला क्या करता ?"

"अच्छा देखो ये बताओ ! बताओगे ?"

"हाँ हाँ पूछ तो सही।"

"वे क्यों आये थे ?"

"वे आये थे यहाँ के लोगों में बँटने के लिए, और आज शाम तक बँटने के लिए।"

"क्यों ?"

"बस इसीलिए कि यहाँ के मुसलमान यहाँ के हिन्दुओं को उनसे मार डालें और शाम को सौ दो-सौ आदमी बाहर से भी आवेंगे।"

"बाहर से ?"

"हाँ।"

"मौलाना !" नूरुद्दीन ने मौलाना की ओर देख कर कहा, "देखो तुम गाँव के बड़े-बूढ़े हो, आज गाँव तुम्हारे कहने में हैगा, जिधर कहोगे-उधर चलेगा। है न ?"

'हाँ सो तो है ही।" नियाजअली ने चिलम को हुक्के के ऊपर ही घुमाते हुए कहा, उनकी आँखें चिलम के ऊपर जमी हुई थीं।

"तो देखो, खुदा के लिए ऐसा मत कर बैठियो कि उन्हें बाँट दो, वैसे हमारा कुछ हर्ज नहीं है। और देखो हिन्दुओं ने हमारा क्या बिगाड़ा हैगा ? बताओ ! अगर बिगाड़ा है तो बताओ ?"

"मैं कब कह रहा हूँ कि बिगाड़ा है ! क्या मैं कह रहा हूँ कि

बिगाड़ा है ?"

"सो देख लो बिचारे गाँव छोड़ कर भाग ही तो गए डर के, गाँव में कैसी मातमी छाय गई ?"

"तो फिर कैसे हो ? तुम ही बताओ," मौलाना ने नूरुद्दीन की ओर देख कर पूछा। उनका हाथ अब भी चिलम को घुमा रहा था। कोई बाहर कुँए पर पानी भर रहा था। कूँए की घिर्री के घूमने से एक शब्द हो रहा था, दोनों उसे सुन रहे थे।

"मैं क्या बताऊँ ? तुम्हें ना सूझता मौलाना ? हरगिज मत देना किसी को भी कुछ हथियार, नहीं तो देखो सब अजाब तुम्हारे ऊपर पड़ेगा।"

"फिर क्या करूँ मैं ?"

"तुम ?"

"हाँ।"

"तुम गाँव वालों को इकट्ठा करके उन्हें समझा दो कि बाहर से अगर कोई आदमी आवे तो उसको गाँव से बाहर ही रक्खें। गाँव में न घुसने दो। वे अगर आवेंगे, तो और नहीं तो बिचारे हिन्दुओं के घरों को ही आग लगा देंगे, उनका सामान ही लूट ले जाएँगे, पर ऐसा नहीं होना चाहिए। तुमने देखा नहीं आज, वे जो सबेरे नसीरपुर के आदमी आये थे, उनका बच्चा मर ही तो गया। उसका बाप, मौलाना, इस बुरी तरह छाती फाड़-फाड़कर रोया कि मैं ही जानता हूँ !"

"अरे हाँ, वे लोग कहाँ गये ?"

"वे उस बच्चे को दफनाने गए, तब से लौटे ही नहीं, मुझे दीखे, कि वे भाग ही गए।"

"हाँ जी जब उन्होंने देखा कि यहाँ एक भी हिन्दू नहीं है, तो भाग

ही गए और क्या करते ?"

"हुआ बुरा मौलाना, तो फिर देखो। और जो ऐसा नहीं करोगे तो देखो गाँव चौपट हो जायगा।" वह मकड़ा अब भी आगे पीछे हिल रहा था, दोनों की बातें खतम हो गई थीं, अन्दर से नियाजअली की बीबी ने झाँका, नूरुद्दीन को देख कर बोली, "क्या कहे, रे नूरा! तैने क्या किया गाँव में, एक भी न छोड़ा हिन्दू ?' और हँस दी।

"ताई, सच्ची पूछो हो मुझसे, बस गाँव में से निकलना बुरा लगे हैगा।"

"सब कहे हैंगे लल्ला, देखा नी जाता उनके घरों की तरफ कू, भला देख तो रात में ई भाग गये चुपके से, कोई हम भला उन्हें जान से मार देते।"

"अरी हाँ ताई! हम तो ये कहें जो वे अब भी आ जाएँ, हम तो बड़े खुस हों।"

'मुझे तो लल्लू, उस परसनदी का बड़ा सोच है, कैसे करेगी बिचारी ? तीन बच्चे हैं उसके गरीबनी के, और वो अन्धा !"

"बस पूछे मती, चाची," नूरुद्दीन ने बनावटी दुख दिखलाते हुए कहा।

बात तय हो गयी थी। गाँव वालों की एक छोटी सी सभा नियाज़-अली की बैठक के आगे की गई। उसमें गाँव के सभी बड़े-बड़े मुसलमान आए। सभी से नूरुद्दीन, निमाज़ी, नियाजअली ने वादा करा लिया कि अगर शाम को बाहर से आदमी आएँ तो उनको गाँव से बाहर ही रोक लिया जायगा। बल्कि एकाध ने तो यहाँ तक कह डाला कि उनको मार कर भगाया जाए सभा होती रही, रहमत दर्जी कह रहे थे

"साब, खुदा की कसम खाकर कहता हूँ, मैं तो अगर ऐसे ही दस

पाँच दिन और रहना पड़े, तो हमारा तो जी गाँव में न लगे। और जैसे कि अब मालूम हुआ है, मौलाना ने बताया कि आज आदमी आवेंगे, उनको गाँव से बाहर ही बाहर रोक कर बिदा कर दिया जावे। अगर वे न मानें तो उनकी भी खबर ली जावे। मैं सच कह रहा हूँ, ये भाई कोई इन्साफ की बात है कि हम अपने बेकसूर पड़ोसी को मारें ? उनकी बहू-बेटियों की आबरू लें ? उनके घर फूक दें ? अगर कोई नहीं देखता, तो खुदा तो कम से कम देखता ही है !"

"अजी तुमको नहीं मालूम," शुबराती ने बात काट कर कहना शुरू किया, "ये भैया अंग्रेजों की चालें हैं, जहाँ हिन्दू ज्यादे हैं वहाँ मुसलमानों को मरवा दिया और जहाँ मुसलमान ज्यादा हैं वहाँ हिन्दुओं को मरवा दिया, और आप मजा ले रहे हैंगे ? कल अखबार में जाने कौन पढ़ रहा था कि जब तक अंग्रेज हिन्दुस्तान से नहीं निकल जायेंगे, तब तक ये मार-काट होती रहेगी। असल बेवकूफ तो हम हैं जो लड़ते हैं। आज हमारे हाथ से जो अंग्रेजी सरकार हिन्दुओं का गला कटवा रही है, क्या कल को हमारे गले पर हिन्दुओं से छुरे फिरवाने में रुक जायगी ? हम उसके जमाई थोड़े ही हैंगे ? नहीं जी, हम अपने गाँव में ऐसी मारकाट कभी नहीं होने देगें, चाहे जो हो।"

नूरुद्दीन ने शुबराती की बात काट कर कहना शुरू किया, "देखो जी मैं कहूँ ये बात कि, अगर हम आपस में सलाह पक्की कर लेगें तो हमें यकीन है कि हमारे भागे हुए भाई भी लौटकर आ जावेगें, नहीं तो भैया, हम होंगे और अंग्रेजऔर जमीदारों का जूता हमारे सरपर होगा। सच जानियो मैं वादा करता हूँ बल्कि हम सबको वादा कर लेना चाहिये कि हमारे गाँव से बाहर कुछ भी होता रहे, हम तो अपने यहाँ कुछ भी नहीं होने देगें। हम नहीं चाहते, जिन लोगों को हम बचपन से ताऊ,

चाचा, भाई, भतीजा कहते आये हैं, उनके साथ हम दगा करें। जो दगा करता है इस्लाम उसे काफ़िर कहता है। फिर जिन औरतों को हम ताई, चाची, दादी, मौसी कहें और वे हमें भाई, भतीजा, चाचा-वाचा कहती आई हैं, उनकी इज्जत लेना या औरों को मौका देना, कितने कमीनेपन की बात है? हमारे मजहब में कहीं नहीं आया ऐसा कि इस कमीनेपन को फैलाने से इस्लाम फूले फलेगा। और साफ बात तो ये है कि ये दंगे-फिसाद इस्लाम के नाम या इस्लाम की भलाई के लिए थोड़े ही होते हैं, ये तो जब काँग्रेस और लीग अंग्रेजों के खिलाफ खड़ी हुई तो अंग्रेजों ने दोनों को लड़ाने की तरकीबें निकाल ली हैंगी, हमारे लड़ने से उनका राज बना रहेगा, हम फिर भी ग़ुलाम बने रहेंगे। हम नहीं चाहते ऐसी बातें यहाँ। अच्छा हाथ तो उठाओ, भला जो मेरी बात को मानते हैं, कि अगर यहाँ दूसरे आदमी आयेंगे और घपला करना चाहेंगे तो हम उन्हें हर ताकत से रोकेंगे।"

कह कर नूरुद्दीन चुप हो गया। खद्दर की टोपी के नीचे उसका काला दाढ़ीदार चेहरा सबों की ओर देखने लगा। बैठी भीड़ में से सबों ने हाथ उठा दिये; दो-एक ने जो नूरुद्दीन की आख़िरी बात नहीं समझे थे, हाथ न उठाया, उनसे दूसरों ने कहा, "अबे उठाते क्यों नहीं हाथ?" तब उन्होंने भी कहने से बगैर समझे हाथ उठा दिये, बाद में पूछने पर वे समझ पाये कि हाथ क्यों उठवाये गये थे।

सबों के चेहरों पर ख़ुशी दौड़ रही थी। दिन भर की कोफ़्त और मनहूसियत के बाद अब शाम को जाकर उनके दिलों में एक ऐसी जगह निकल आई थी, जहाँ एक नहीं हजारों हिन्दुओं को सहारा मिल सकता था।

वे लोग उठ कर चलने लगे, सबों की ज़बान पर यही चर्चा थी कि

देखें बाहर से कैसे आदमी आते हैं ? हम सब एक हैं, और दुनियाँ अगर हमें अलग करना चाहेगी, तो भी हम अलग नहीं हो सकते।

कुछ ऐसे भी थे उन्हीं में, जिनकी यह इच्छा थी कि मारकाट हो तो कुछ मज़ा देखने को मिल जाये। उन्हें इस्लाम धर्म की पवित्र नींव पर चोट पड़ने की परवाह न थी; उनको हिन्दुस्थान के माथे पर कलंक का धब्बा गहरा होने की शर्म नहीं थी; उनको इसकी परवाह नहीं थी कि दुनिया जब सुनती है कि भारत के ग़ुलाम सपूत आज विदेशियों की चालों में आ-आ कर आपस में लड़ते हैं और मरते हैं, तो वे हमारे नाम पर हमारी करतूतों पर थूक देती है। उनको इन सब बातों की परवाह नहीं थी कि सारे देश में यह खबर फैलती है कि एक हिन्दुस्तानी या अन्य हिन्दुस्तानी भाई की बहू-बेटी की आबरू पर हमला करता है, और यह नहीं सोचता कि मैं भी हिन्दुस्तानी हूँ। फिर इस निर्लज्जता की पराकाष्ठा और अन्तिम सीमा का वर्णन विदेशी पढ़ते हैं तो उनकी आँखों में आँसू आ जाते हैं। फिर भी अंग्रेजी साम्राज्यशाही के पूँजीपतियों की इच्छायें बनी रहती हैं कि ये खून-खराबी होती ही रहें, ये ग़ुलाम लड़ते ही रहें और उनका अपना शिकंजा ढीला न होने पावे।

१०

दिन ढल चुका था। पंछी अपने घोसलों की ओर उड़-उड़कर जा रहे थे सारे गाँव पर एक बढ़ती हुई सरदी फैलने लगी। पेड़ों के पत्ते बिना हिले खामोश थे। चलते जाते लोग-बाग फिर अपनी-अपनी चादरों और कम्बलों को निकालने लगे। मस्जिद में शाम की नमाज की अज़ान लग रही थी। उसकी पैनी आवाज़ के स्वर विनय के भावों को लेकर उस पैदा करने वाले से दुआ कर रहे थे। इमाम अज़ान के हर शब्द

का उच्चारण करते समय अर्थों के अनुकूल ही स्वरों को निकालने का प्रयत्न कर रहा था। गाँव दम साधे अज़ान की खामोशी से सुन रहा था। मस्जिद के मीनार और धर्म के स्तम्भ एक अजीब शान से गाँव भर पर अपनी सत्ता जमाये हुए खड़े थे।

अज़ान खत्म हुई। फिर भी कानों में उसके सुरीले स्वरों की लहरें-सी गूँजती रह गईं, मानो कहीं दूर होने वाली अजान अभी हो रही है और उसके क्षीण मधुर स्वर बराबर रुक थम कर आ रहे हैं। गाँव वाले 'या अल्ला' कह कर अपने काम-धन्धों में लग गये। चार-छः तोते गाँव के ऊपर को चें-चें करते हुए तेज़ी से उड़े चले गये। अँधेरा हाय-हाय करता हुआ बढ़ रहा था। हिन्दुओं के घर पूर्ववत् बंद और जन रहित थे। बाहर घरों से निकलता हुआ धुआँ कुहरे की शक्ल में खेतों तक सीधी लकीर की तरह ज़मीन से कुछ ही ऊपर फैला हुआ था। गाँव के बच्चे एक तख्ते में रस्सी बाँधे, उस पर एक बच्चे को बिठाये, शोर मचाते हुए उसे खेंचे-खेंचे घूम-फिर कर खेल रहे थे।

नूरुद्दीन और निमाजी ने घर आकर अपने-अपने यहाँ छिपे मर्द-औरतों को जब खबर दी कि गाँव के सब आदमी किस प्रकार गाँव के हिन्दुओं की रक्षा करने को तैयार हैं, तो उनके मुर्दा-से दिलों में जान आ गई, और एक डर और वैमनस्य की भावनाएँ जो उनके दिलों में थी, एक प्रेम तथा मुसलमानों के प्रति श्रद्धा में परिणत होने लगी। दिन भर की घुटन, थकन, भूख-प्यास एक क्षण के लिए न जाने कहाँ भाग गई? सबों ने एक दूसरे की ओर देखा और देख कर मुस्कराये, मुस्कराहट में अब भी एक प्रकार की ग्लानि तथा विवशता थी. और कुछ अविश्वास भी, जैसे एक बंदी दूसरे अपराधी के अपराध पर घृणा करके मुस्करा देता है। वह समझता है कि निर्दोष फिर भी निर्दोष हैं

और दोषी फिर भी दोषी; स्वयं जैसे अपने ऊपर से विश्वास उठ जाता है किसी का।

ये हर्ष की भावनायें इन छुपे हुए हिन्दुओं और बस्तीवाले मुसलमानों में थोड़ी देर ही रही; जब कि यकायक भाले लिए हुए तीन-चार घुड़सवारों ने गाँव की गलियों को रौंदकर फेंक दिया। नियाजअली की बैठक के आगे आकर घोड़े हिनहिनाने लगे। तेज़ी से भाग कर आने से घोड़ों के नथुने प्रत्येक श्वास में हाँफते समय फूल जाते थे। सवार नियाज़अली की बैठक के सामने बड़ी जल्दबाज़ी में "मौलाना! मौलाना!!" पुकारने लगे। पर अन्दर से उन्हें कोई उत्तर नहीं मिला; फिर खड़े हुए लोगों से उन्होंने पूछा, "मौलाना कहाँ चले गये? और यहाँ के हिन्दू सुना है कि भाग गये?"

"हाँ साहब!" डरे हुए एक व्यक्ति ने कहा।

"कहाँ भाग गये?"

"पता नहीं साब हमें," दूसरे ने उत्तर दिया।

घोड़ों की लगामें फिर मुड़ीं, बेताब घोड़े फिर गलियों में चकरडंड काटने लगे। उत्तर-पश्चिम की तरफ से एक भीड़ हल्ला-सा बोलती, गाँव में घुसी। एक अजीब-सा शोर और आफ़त-सी उनके साथ चल रही थी। आते वक्त उन्हें गाँव के निहाली चमार और उसकी बहू जो कई दिनों से बाहर एक शादी में गए थे, मिल गये। उनके साथ एक डेढ़ वर्ष का लड़का भी था। भीड़ उन्हें घेरे हुए गाँव में आ गई।

गाँव के लोगों ने देखा कि उस भीड़ में नसीरपुर का कोई न था। न जाने ये लोग कहाँ के थे, और उस औरत को इस बुरी तरह छेड़ रहे थे कि गाँववालों से देखा नहीं गया। उसके सरकी ओढ़नी न जाने कहाँ गिर गई थी, या किसी ने उड़ा ली थी। एक लहँगा और एक फटी-सी

कुर्तिया पहने जाड़े में वह उन बदमाश गुण्डों से घिरी हुई बुरी तरह छेड़ी जा रही थी। रो-धोकर पहले ही वह अपनी आँखों के आँसू निकाल चुकी थी, अब केवल हाथ जोड़-जोड़ कर उन अन्याइयों से प्रार्थना करने के सिवा उसके पास कोई तरकीब नहीं थी। उसके सिर के बाल सब नोचाखोंची से उलझकर रीछ की तरह गुफ्फ हो रहे थे। उसकी छाती के पास के कुर्तिया के बटन सब टूट गये थे। कुर्तिया कई जगह से फट चुकी थी। अपनी शर्म दोनों हाथों से ढापने भी नहीं देते थे वे पाजी। एक तरफ उसके बच्चों को दो तीन लफंगे लिये बार-बार रुला देते; उनके चुटकी भरने से बच्चा सहसा बिलबिला कर रो पड़ता और रोता रहता, जब उसका रोना धीमे पड़ जाता तो वे फिर चोंट लेते। उसे रोता देख उसकी माँ उधर भागने का प्रयत्न करती और बच्चे को माँगती, मगर भीड़ ठट्ठा मार कर हँस देती और उसे रोक कर छेड़ने लगती।

उसका पति निहाली एक ओर को बँधा हुआ नंगा बैठा ये सब कुकर्म देख रहा था। उसके बदन पर कहीं-कहीं जख्म थे, उनमें से रक्त बह कर जम गया था, अपने बच्चे और बीबी के साथ होती दुर्दशा, और फिर अपने ही गाँव में होने वाले अत्याचारों का वह खून के घूँट पी-पीकर देख रहा था। उसे इतना मारा गया और गाँव के भागे हुए हिन्दुओं का पता पूछने के लिये उसे छुरों की नोकों से कई जगह ऐसा छेदा गया कि उसका शरीर सुन्न होकर, जहाँ-जहाँ व्रण थे, दर्द कर रहा था।

गाँववालों ने देखा कि यह आदमी तो निहाली है, तो तुरंत उनका रक्त खौल उठा, निहाली ने जब अपने गाँववालों को देखा तो उसका हृदय रो पड़ा। जिन लोगों का साया उसके ऊपर था, वे ही उसकी सहायता करने में न जाने क्यों संकोच कर रहे थे? मुसलमानों ने अपने

घरों को बंद कर लिया, बच्चे गलियों से खेलते हुए कोठरियों में छुपा दिये गये।

कि भीड़ को चरिता हुआ, अपने साथियों के साथ नूरुद्दीन निहाली के पास आ खड़ा हुआ, और ललकार कर बोला, "निहाली! तेरा ये हाल?"

निहाली रो पड़ा, और अपने नग्न शरीर को दोनों टाँगों से छिपाने का व्यर्थ प्रयत्न करने लगा और बोला, "मिसतरी, तुम्हारे होते ये हाल?" वह आगे न बोल सका।

"अच्छा! खोल दो इसके हाथ!" गरजकर नूरुद्दीन ने अपने साथियों से कहा। भीड़ वालों ने हाथ खोलने पर हस्ताक्षेप किया, पर नूरुद्दीन की दूसरी फटकार ने उन्हें पीछे हटा दिया।

निहाली खुल गया। अपनी पगड़ी फेंककर दूसरे क्षण नूरुद्दीन ने निहाली से कहा, "ले पहन ले इसे! और देखें तेरे अब कौन हाथ लगाता है! और तेरी लुगाई?"

पास में खड़ी उसकी बहू चिल्ला पड़ी, "मिसतरी!" और आखें नीची कर ली लज्जा से। मुड़कर नूरुद्दीन ने देखा, निर्लज्जता की हद थी। एक मुसलमान उससे चिपटा जा रहा था। और वह अपना मुँह उसके बढ़ते हुए होठों से बचाने को चिल्ला रही थी, कि पीछे से बढ़ कर नूरुद्दीन ने एक लात मार कर उस नीच को नीचे गिरा दिया। उसके साथियों को अब तक पता नहीं चला कि ये सब क्या हो रहा है।

"मेरा सुन्दरा?" वह अपने बच्चे के लिये आँखें फाड़कर चिल्लाई और भीड़ की तरफ बच्चे को देखने लगी। कि गाँव के एक जुलाहे ने उसके बच्चे को भीड़ से छीन कर उसके हाथ में दे दिया।

निहाली, उसकी बहू और बच्चा आठ-दस, गाँववालों की संरक्षता

में सौंप दिये गये। वे लोग उसे लेकर चले गये। रोती हुई निहाली की बहू नंगे सर उनके साथ चल दी। अँधेरा-सा था, चाँद की धुंधली रोशनी में आदमी पहचाना नहीं जाता था।

गाँव वालों ने आये हुए लोगों को चुनौती दे दी, कि यहाँ गाँव से, वे लोग चले जाँय। ऐसी कमीनी हरकतें वे अपने गाँव में नहीं चाहते, नहीं तो गाँव का गाँव उनके विरुद्ध लड़ने को तैय्यार है।

उधर चमगादड़ें हवा में भीड़े के ऊपर मँडरा-मँडरा कर उड़-उड़ जातीं, फिर आ-आ जातीं, कि पूरब तरफ से गाँव के मुसलमान, हल्ला करते हुए बाहर से आते हुए मुसलमानों के सामने आकर डट गये। निमाजी का लड़का अलीजान लाठी सँभाले सीना तान बोला—"अगर तुम अभी गाँव खाली नहीं करते तो हमारी तुम्हारी बिगड़ जायगी, ये बेशर्मी की बातें किसी दूसरे गाँव में जाकर करना!" इधर नूरुद्दीन ने गरज कर हुक्म दे दिया, "पड़े मार इन सालों पर!.....दो लठ्ठ इनके सरपर, अगर नहीं जाते........"

लाठियाँ तन गईं। आये हुओं के अरमानों पर पानी फिर गया। उन्हें मालूम हो गया कि सारे गाँव की एक सलाह है, और वे एक संगठित गाँव का कुछ नहीं बिगाड़ सकते।

बातें हो ही रहीं थीं कि घुड़सवार भाले लिये हुए फिर गली में दिखाई दिये; उन्होंने पुकार कर पूछा कि 'क्या माजरा है, और कोई भी कार्रवाई नहीं शुरू की गई!"

गाँववालों ने उन्हें भी करारा जवाब दिया, और उन्हें चले जाने पर मजबूर करने लगे। इतनी सारी गाँवकी लाठियाँ देखकर वे भी अब समझ गये थे। मगर भीड़ घुड़सवारों के बल पर खड़ी होकर अपनी कार्रवाई करने पर उतारु होने लगी। कि ज्यादा बोलते हुए

अलीजान से एक सवार बोला, "हरामजादे ! ज्यादा जबान क्यों चला रहा है ? कुछ दुनिया की भी खबर है कि क्या हो रहा है ?"

बस क्या था ? निमाजी को क्रोध आ गया, तड़क कर बोला, "देख बे ! जबान सँभाल कर बोल !" और अपने साथियों से बोला, "पड़े मार इन सालों पर ! ये तो हमारी आबरू लेने पर उतारू हो गये !"

धड़ा-धड़ तीन-चार लाठियाँ उनके घोड़ों पर पड़ी। सवार ने अपना भाला घुमाया, पर दूसरे क्षण घोड़ा जो बिदका, तो सिवाय भागने के और कोई उपाय नहीं सूझा। उन आये हुए लोगों में भगदड़ मच गई। भागते लोगों पर डंडे बरसने लगे। इसी शोर से गाँव के कुत्ते भौंक उठे।

नूरुद्दीन ने अपने साथियों के साथ उस भीड़ का पीछा किया। गाँव से बाहर निकल आने पर फिर उस भीड़ के दो-चार समझदार आदमी अपने पीछा करने वालों से चिल्ला कर बोले, "जरा ठहर जाओ, हमें बात करनी है तुमसे, जरा ठहर जाओ।"

गाँव की पीछा करती भीड़ उनकी बातें सुनने के लिये ठहर गई। उन बाहर वालों ने पूछा कि "आखिर माजरा क्या है ? क्यों तुम लोगों को मुसलमान होते हुए हिन्दुओं का इतना ख्याल है ?"

नूरुद्दीन का पाँव मोच खा गया था। एक असह्य पीड़ा उसके पंजों में हो रही थी, कराहते हुए उसने कहा, "सुन लो जी ! हम सब बातें समझते हैं, हम मुसलमान हैं और तुम भी मुसलमान हो, और वे हिन्दू हैं। आज तक सैकड़ों बरस हो गये, कभी ऐसी मारकाट नहीं हुई थी, फिर आज ही क्यों हम उन्हें मारने लगे ? तुम तो सिखाये हुए हो। हमारा बेकसूर हिन्दुओं पर हाथ नहीं उठेगा, और न हम दूसरों को उनपर हाथ डालने देंगे। ये समझ लेना, हम ऐसे मुसलमान नहीं हैं जैसे तुम।"

"क्यों जी हम कैसे मुसलमान हैं?" एक ने ज़रा झेंप कर पूछा।

"तुम लोग ऐसे मुसलमान हो जो अपने ईमान से गिरे हुए हो, इस वक़्त अन्धे हो। तुम्हें मज़हब की परवाह नहीं है। तुम तो एक नीच ख्याल को लेकर यहाँ आये हो, हमारे नबी लोग कभी ऐसे नीच ख्याल को लेकर कहीं नहीं गये। इस नीच ख्याल का सबूत वह गरीब औरत और उसका मालिक निहाली हैं। मैं ज्यादा नहीं कहना चाहता। तुम अगर आज मुसलमान न होते तो मुझे खुशी होती। इस्लाम तुम्हारे ऊपर थूकेगा। मुझे तुम्हारे मुसलमान होने पर शर्म आती है।"

"क्यों जी और जिन्होंने बिहार में मुसलमानों को मारा है, गढ़मुक्तेश्वर के मेले में मुसलमानों का सफाया कर दिया, उनका कोई इलाज नहीं? क्या हमें गुस्सा नहीं आता, इन बातों पर?"

"हाँ आता क्यों नहीं, हर मजहब में कमीने और बेशर्म लोग होते हैं, जिन हिन्दुओं ने ऐसा किया, उन पर दुनिया ने थूका है, उनकी बातों से खुद शर्मदार हिन्दुओं की गरदनें शर्म से झुक जाती हैं। शराफत फिर भी शराफत है और कमीनापन फिर भी कमीनापन। तुम लोग मुसलमानों में जन्म लेकर कमीने कहलाओगे, और जिन्होंने मुसलमानों पर हाथ उठाया है वे हिन्दुओं में पैदा होकर कमीने कहलायेंगे। कौन तुम्हें या उन्हें शरीफ कह देगा?"

सारी भीड़ नूरुद्दीन और उनकी झड़पों को सुन रही थी, और जो बात क़ायदे की कही जाती थी, उस पर सबों की आँखें खुल जाती थीं। चाँद की रोशनी में नूरुद्दीन तलमला कर जो जवाब देता, उसका फिर कोई जवाब नहीं बनता था। आखिर फिर एक ने बड़ी अक्लमन्दी दिखाते हुए पूछा, "क्यों जी, फिर ये सब धपलेबाजी क्यों हो रही है, जनाब?"

"क्यों हो रही है? यों हो रही है कि हम तुम सब गुलाम हैं, अनपढ़ हैं, गुलाम और बेवकूफ और अनपढ़ लोग आपस में लड़ते हैं, गुलामी लड़ाती है। हमारी नसों में जो खून दौड़ रहा है, वह गुलामी का भूखा है। हमने कभी आज़ादी की हवा नहीं चक्खी। गुलाम-गुलाम लड़ते हैं, मालिक लड़ाते रहते हैं। ये जो घोड़े पर चढ़े-चढ़े तुम्हें नचाते फिर रहे हैं, ये इस्लाम के खैरख्वाह थोड़े ही हैं? ये अंग्रेजों के खैरख्वाह, नमकहलाल हैं, और उनकी खैरख्वाही में ये अपने भाइयों के गले घोंटते फिर रहे हैं। उनकी बहू-बेटियों का आबरू उतरवाते इन कुत्तों को शर्म नहीं आती, समझे? क्या समझे?"

भीड़ पर नूरुद्दीन की बातों का काफी असर हुआ। और उनमें से एक बोला, "है तो बात यही मियाँ, पर क्या करें?"

"करो क्या? डूब मरो अगर शर्म हो, क्या इसी का नाम कौम पर मरना है?"

भीड़ का साहस न हुआ जो गाँव में किसी चीज को हाथ लगावें। सवार जाने कहाँ भाग गये थे? नियाजअली एक तरफ खड़े नूरुद्दीन की हर बात को सुनकर मुग्ध हो जाते। नूरुद्दीन की हर बात उनके कानों के रास्ते दिल में उतर कर बैठती जा रही थी। सारे गाँव के दिल जोश से भरे हुए थे।

नियाजअली को देखकर नूरुद्दीन फिर भीड़से बोला, "और तुमलोगों ने तो कल मौलाना नियाजअली के पास छुरे और भाले भेजे थे। क्यों नहीं चल गये तीर? मौलाना इतने कमीने और गये गुजरे आदमी नहीं हैं जो तुम्हारे जैसों के सिखाये में आकर अपने भाइयों को हलाल करवाते फिरते। याद रखो मौलाना से उन छुरों और भालों के बारे में अगर कुछ भी कहा या पूछा, तो भी, हम लोग तुमको देखेंगे!"

अपना नाम सुन कर नियाजअली चौंके। पर जब उनकी बात नूरुद्दीन ने कह ली तब उन्हें भी जोश आ गया और आगे बढ़ कर बोले, "ये मुझे फिर क्या कहेंगे, अभी कह कर दिखावें! मैं इनके कहने में आकर क्या गाँव का सत्यानाश करवा देता? दुनिया मुझे क्या कहेगी?"

भीड़ के आदमियों के सर शर्म से झुक गये। उन्हें सिवाय वहाँ से सरक जाने के और कोई चारा न सूझा, और वे लोग चल पड़े।

उनके चले जाने के बाद गाँव वाले गाँव की तरफ लौटे। नूरुद्दीन के पाँव में पीड़ा हो रही थी, लँगड़ाते हुए वे चल रहा था, बोला, "बवाल नहीं तो! मेरी तो टाँग भी मोच गई साली।" और फिर अपने गाँव वालों से बोले, "अरे निहाली को तो देखो, कहाँ हैगा विचारा? देखा उस बिचारे पर कितनी मार दी? और उसकी बहू को, इन हरामजादों ने इस बुरी तरह तंग किया कि बस मैं कह नहीं सकता।"

सब आकर नियाजअली की बैठक पर जमा हो गये। निहाली बुलाया गया, उसकी बहू भी। वह नूरुद्दीन का साफा बाँधे नंगा खड़ा था। उसकी बहू, एक फटा-सा कपड़ा, जाने कहाँ से माँग कर, सर पर डाले एक ओर खड़ी बच्चे को दूध पिला रही थी।

"क्यों रे, यहाँ तो आ," रहमत दर्जी ने निहाली को बुलाया।

चिराग के पास लाकर सबों ने देखा, कि उसके कमर, बाहों, पेट टाँगों, पर मार और चोट के निशान उभरे हुए थे। निहाली की आँखों में आँसू आ गये, बोला, "अब बोलो, मैं कहाँ जाऊँ, किससे कहूँ मुझे ऐसा तंग किया, और बार होता तो गले में फाँसी डाल के मर जाता। पर मौलाना का करूँ, एक बच्चा, सो उसे छीन के मेरी बहू की दुरगति करते-करते वे यहाँ ले आये; मेरी चुटिया के सब बाल उखाड़ डाले, एक वो लौंड़ा, सो उसे नोच-नोच के रुला-रुला के हमें दिखाया....."

"बस भाई रहने दे, अब जो हुआ सो हुआ," निमाजी बोला, "और अब तू मजे में अपने घर जा, तुझे अब एक बोल भी न कहेगा कोई, लेजा अपनी बहू को भी......"

"और साहब, जब ,सारे हिन्दू चले गये, तो मैं यहाँ का करूँगा अकेला रह के, बताओ ?" निहाली बोला।

"अरे सब आ जाएँगे, तू तो चल अपने घर, बालक बच्चों को आराम दे, जाकर बे-फिक्र रह।"

"अच्छा साहब," कहकर, भीड़ में से एक तरफ को निहाली अपनी बीबी को साथ लिये चल पड़ा। चाँद की उजाली में वह थोड़ी दूर तक जाता दिखाई दिया। दूर कुछ मुसलमानों की औरतें निहाली की बहू को देख कर बोलीं, "बेचारी को कित्ता तंग करा उत्ते नास-गओं (उतने नासगयों) ने, मैं तो कहूँ उनके घर के सब मर जायँ।"

दूसरी बुढ़िया बोली, "नालायकों को सरम न आई पराई लुगाई पे हाथ डालते ! देख लीये निहाली की बहू ! कीड़े पड़ेंगे उनके बदन में जिन्ने तुझे छेड़ा हैगा !"

निहाली की बहू चुपचाप सब सुनती हुई निहाली के पीछे-पीछे निकली चली गई। उसका जी इन संतोषप्रद बातों को सुनकर कुछ हल्का जरूर हो गया, पर बीती हुई बातों को याद करके अब भी वह सिहर उठती थी। उसका रोम-रोम काँप उठता था।

निहाली के चले जाने के बाद भी गाँववालों का जोश ठण्डा नहीं हुआ था। उन्होंने भागे हुए हिन्दुओं की चर्चा छेड़ दी। उन्हें कहाँ ढूढ़ने जायँ ? और कहाँ से लाकर बसायें ? यही उनकी चर्चा का विषय था। कि निमाजी ने उन लोगों से पूछा, "अब तो उन गये हुओं का आना मुश्किल है, पर अगर वे लौट भी आवें, तो उनकी हिफाजत की

पक्की बात कैसे हो सकती है ?"

भीड़ में से एक जुलाहे ने कहा, "वाह जी वा ! अजी ये भी कोई बड़ी बात है ? हम भी देखें उनके कौन हाथ लगाता है ? अरे, जब तक हमें खबर नहीं थी, चाहे जो होता, पर अब तो यह सवाल हमारे आपस का है, हम सालों का सर फोड़ दें जो उन्हें कुछ कहें !"

"सच्ची बात है ! भाई खुदा की कसम !" रहमत दर्ज़ी ने हुक्के को थामते हुए कहा, "कि मेरा तो जी आज गाँव में सारे दिन नहीं लगा। तमाम दिन बौराये कुत्ते की तरह फिरता रहा, गाँव काटने को दौड़ा था। भैया, बिना हिन्दुओं के लौटे गाँव में रौनक नहीं आयगी।"

"अजी भला क्या बात है ! वो तो फिर बात दूसरी है।" जुलाहे ने खाँसते हुए कहा, हुक्के के धुएँ का चस्का लगने से उसका खाँसना बंद नहीं हुआ। निमाज़ी ने फिर कहा, "तो बस पक्की है बात ? हो तय्यार अपने हिन्दुओं की हिफ़ाजत के लिये ? कभी पीछे बाद में पीठ दिखा जाओ तो ?"

"तुम भला, कारीगर, कैसी बात करते हो ? पहले हम, बाद में हिन्दू। तुमने हमें निपट गँवार ही समझ लिया ? अरे क्या आज साँझ की बात से हमारे में अकल नहीं आई होगी ?"

"हाँ यही बात है, कभी फिर... ....." निमाज़ी की बात पूरी न हुई थी नूरुद्दीन ने जो अब तक नियाजअली से बातें कर रहा था, निमाज़ी से कहा, "निमाज़ी। निकाल लाओ भाई उन्हें बाहर बेखटके, हो गई बात बस।"

निमाज़ी समझ गया और बोला, "कहीं कुछ और न हो जाय ?"

"अरे किसे निमाज़ी ?" रहमत ने बेताबी से पूछा।

"हिन्दुओं को," मुस्कराते हुए निमाज़ी बोला।

"वे कहाँ हैंगे ?" उसने उतावला होकर पूछा। इस बात के सुनने के लिए सब बेताब हो उठे।

"सब निमाजी के यहाँ अन्दर तीनों कोठों में छुपे बैठे हैंगे। मर्द तो वहाँ और लुगाईयाँ मेरे यहाँ हैंगी। जाओ......"

उसकी बात पूरी भी न हो पाई थी कि सब लोग निमाजी की घर की ओर भाग पड़े। रहमत ने नूरुद्दीन से कहा, "तुमने कमाल कर दिया, मिस्त्री, वाह! क्योंजी तुमने पहले क्यों नहीं कही ये बात हमसे ?"

"ये बातें, सबसे कहते फिरने की थी, जो कहता फिरता ?"

"तो मैं किसी से कह देता क्या ? तुम तो ऐसी बात कह रहे हो! तो क्या वहाँ सब लोग हैं ?"

"हाँ-हाँ, यार, सब हैं," और उठकर भागी गई भीड़ के पीछे नूरा लँगड़ाता हुआ चल पड़ा। साथ में रहमत अपना मिट्टी का हुक्का लटकाये चल रहा था।

गाँव में यह खबर जरा देर के लिए फिर फैल गई। गाँव भर के लोग और औरतें उमड़-उमड़ कर निमाजी और नूरुद्दीन के घर की तरफ भाग खड़े हुए।

बिना पूछे वे लोग निमाजी के आँगन में जा घुसे। निमाजी की माँ सहम गई, उसे डर हुआ कि कहीं इन्हें पता न लग गया हो। और ये हिन्दुओं को मारने न आये हों। उसने भी उनसे कहा, "क्यों रे! यहाँ का लेने आये हो ? तुम्हें दीखता ना कि ये घर जनाना हैगा ? यहाँ क्या धरा हैगा ?"

"अरी ताई! हमें क्या पता नहीं ?" रमजानी बोला। इतने में भीड़ ने तीनों कोठरियों के दरवाजे खोल दिये।

अन्दर हिन्दुओं के पुरुष और बड़े बालक खड़े हो गये थे। उन्हें

पता लग चुका था कि गाँव वालों ने बाहर के आये हुए लोगों को भगा दिया है।

"अरे निकलो, भाई, जाओ अपने-अपने घरों को!" निमाजी ने उन लोगों से कहा और उन्हें निकलते हुए देखने लगा। उनके आँगन में चाँदनी फैली पड़ी थी। गाँव के आदमियों का ठठ्ठ लग गया। गाँव में लगने वाली एक पैंठ (हाट) से उठने वाले शोर की तरह आँगन में से शोर उठ खड़ा हुआ। हिन्दुओं को विश्वास नहीं होता था, फिर भी निमाजी के दोबारा कहने पर, अपना-अपना सामान उठाकर वे लोग बाहर निकलने लगे। आँगन में खड़ी भीड़ ने देखा, गौरी लाला, गुरदयाल सूरा, चन्दन, राजाराम, देवी, सभी लोग जो भी उसके गाँव के थे, अपना-अपना सामान लादे उनके बीच में आ खड़े हुए। भीड़ उनके साथ-साथ बाहर निकलने लगी। सभी कह रहे थे कि "यारो, मौज किए जाओ, देखें कौन तुम्हें कुछ कहता है?"

अन्दर बैठे बैठेये लोग ऊब गए थे, उनकी टाँगें अकड़ गई थीं। अन्दर कोठरी में बदबू के मारे साँस लेना मुश्किल था। बहर आकर ठण्डी सांस उन्हों ने ली। उन्होंने आसमान की तरफ देखा। तारे मुस्करा रहे थे। एक तारा टूट कर पूरब से पच्छिम की तरफ टूटा चला गया; सोने की एक पीली लकीर उसके पीछे-पीछे खिंची चली गई। आधा चाँद अपनी ठण्डी चाँदनी दुनिया पर हँसता हुआ बरसा रहा था। गाँव में एक पल में ही नया जीवन आ गया!

छूटकर लोग नूरुद्दीन के घर अपनी अपनी स्त्रियों को लिवाने जा पहुँचे। उनकी बेकली बढ़ गई थी, भूख-प्यास ने कलेजा चाट लिया, पर अब न जाने भूख प्यास कहाँ चली गई थी। जिन नन्हे नन्हे बच्चों को वे आधी रात ईश्वर के आसरे पर छोड़ गए थे, पुनः उन्हें गोद में

ले लेकर एक बार उनके हृदय फूल गए। बिछड़े पति-पत्नी, बाल-बच्चे ऐसे मिले, जैसे बरसों कारावास में रह कर बंदी पुनः अपने स्वजनों से मिलता हो।

बीसियों औरतों की जबानें चक-चक-चक-चक चल रही थीं। सबों के दिलों में हर्ष था। एक दूसरे को देखकर मुस्करा देनेके सिवाय और कोई ढंग अपनी खुशी दिखाने का उनको याद नहीं था।

सब अपने-अपने घरों को चले जा रहे थे। उन्हीं में गुरदयाल सूरा की लठिया थामे अलीजान आगे-आगे उसके घर पहुंचाने जा रहा था। कल रात की बात याद करके अलीजान बोला, "ताऊ!"

"का कहे लल्ला?" गुरदयाल ने पूछा।

"कहो ताऊ बच गये? अब मिठाई खिलानी पड़ेगी!"

"लल्ला तैंने कल कही तो थी, और देखा! भैय्या, तू न होता तो मुझे तो कोई यों ही मार गेरता।"

"अब ताऊ मौज करे जाओ, कोई साला आँख नहीं मिला सकता।"

"अच्छा?"

"हाँ, बस अब तय हो गई बात।"

दोनों बातें करते जा रहे थे। नीचे धरती ठण्डी थी। हर एक की जबान पर नूरुद्दीन के साहस, अपने धर्म पर अड़े रह कर अपने हिन्दुओं की रक्षा करने की प्रशंसा थी।

घर आ-आ कर सबों ने अपनी-अपनी चीजें देखीं, ज्यों की त्यों एक पुराने साथी की तरह रखी हुई वे उनकी ओर देख रही थीं। उस अन्धेरी-उजाली रात में अपने-अपने घर सबों को पराये-पराये-से लग रहे थे। मानों बहुत दिनों बाद आकर वे अपनी चीजों को देख

रहे हों।

परसन्दी अपने बच्चों को लिये, एक पड़ोसी के सर पर अपना सामान लदाये, फिर अपने घर का ताला खोल कर आंगन में आ बैठी। उसने देखा, कोने में वे बांस ज्यों के त्यों रखे हैं, अन्दर उसका तोता सहसा चें-चें कर के चिल्ला उठा। दिन भर का भूखा-प्यासा गरीब तोता!

गांव में एक बार फिर जीवन आ गया। पहले की-सी चहल पहल फिर हो गई। गौरी लाला ने अपनी दुकान और बैठक खोल दी। एक हल्के दीये की रोशनी में गाँव के कई आदमी लाला की दुकान के आगे बैठे, लाला की दी हुई मुफ्त की सिगरेटें फूँक रहे थे; उन्हें इस प्रकार बैठना आज सारे दिन भर नसीब नहीं हुआ था। वे जी भर कर लाला की दुकान के आगे बैठ लेना चाहते थे।

नूरुद्दीन के साहस ने, उसके शुभ विचारों ने गाँववालों को दिखला दिया कि एक सच्चे मुसलमान में इस्लाम के प्रति कैसे विचार होने चाहियें। इस्लाम की बुनियाद कितने पवित्र सिद्धान्तों पर रखी गई है; ऐसे-ऐसे सांसारिक झमेले उसकी अटल इमारत को नहीं हिला सकते और फिर एक हिन्दोस्तानी होने के नाते उसका एक दूसरे हिन्दोस्तानी के लिये क्या फर्ज है।

उसके मकान के सामने बैठक के ऊपर छज्जों से लटकती रस्सी अब भी अंधेरे में जब हवा चलती है, हिलने लगती है, यह वही रस्सी है, जिसमें कभी एक बांस के अद्धे को बाँधा गया था, और उस बाँस में पिरोया हुआ तिरंगा झण्डा लहराता हुआ दूर से दिखाई देता रहता था।

आज वह झण्डा नहीं है। उस झण्डे की श्रद्धा और उसका प्रभाव

गाँव पर नूरुद्दीन बन कर छा गया था।

गाँव मे अब भी सुहावनी संध्यायें और रातें होती हैं, फिर रोज रात को, रोज संध्या समय बाद गुरुदयाल की वही पुरानी टेर के चार बोल, सुनाई दे जाते हैं, 'बाबा कुछ मिले......कुछ मिले .....'

गाँव में एक तूफान आया और निकल गया। उसमें खोये हुए सुमेरा की केवल एक छोटी सी कच्ची मिट्टी की सामाधि, अब भी गाँव के बाहर, ईखों के खेतों और उस तालाब के पास बनी हुई हैं, जहाँ अब भी ठण्डी रातें होती हैं, पाला पड़ता है, पानी सारी-सारी रात बरसता है। चारों ओर रात को वहाँ गीदड़ सियार हुहिया उठते हैं। तालाब में तारों की परछाइयाँ, उस तालाब में हिलते हुए नीलोफर के फूलों और पत्तों से खेलती रहती है। वहीं अपनी एकान्त कब्र के नीचे सुमेरा अब भी मुँह बाये पड़ा सोता रहता है, माँ-बाप से अलग, उस तूफान का मारा हुआ।